५७

कर्मयोग

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(माधुरी-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का सत्तावनवाँ पुष्प

कर्मयोग

[अध्यात्म-विद्या की विशेषज्ञा श्रीमती ओ हष्णु हारा के Practical Yoga का अनुवाद]

अनुवादक

संतराम बी० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सं० १९८२ वि० [सादी ॥)

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीभगवानदास गुप्त
कमर्शल-प्रेस
कानपुर
[सिर्फ़ टाइटिल और पहले चार पृष्ठ नवलकिशोर-प्रेस,
लखनऊ में मुद्रित]

निवेदन

कुछ वर्ष हुए, मैंने अध्यात्म-विद्या की विशेषज्ञा श्रीमती श्रो हृष्णु हारा की दो पुस्तकों का हिंदी-अनुवाद तैयार किया था। उनमें से एक को तो "मानसिक आकर्षण द्वारा व्यापारिक सफलता" के नाम से इण्डियन प्रेस, प्रयाग ने प्रकाशित किया, और दूसरी को "एकाग्रता और दिव्य शक्ति" के नाम से बंबई के गाँधी-हिंदी-पुस्तक-भांडार ने। मुझे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि जनता ने इन पुस्तकों को पसंद किया है। दोनों के दो-दो संस्करण हो चुके हैं। उनको पढ़कर अनेक जिज्ञासुओं ने मुझे पत्र लिखे, और उसी लेखिका की इसी विषय की अन्य पुस्तकें माँगीं। कुछ लोगों ने लेखिका की विधियों का अभ्यास करके अपने व्यवसाय और स्वास्थ्य को भी बहुत कुछ उन्नत किया है। वस्तुतः वे पुस्तकें आध्यात्मिक विद्या के अभ्यासियों के लिये बहुमूल्य हैं।

इन्हीं श्रीमती की तीसरी पुस्तक Practical Yoga का हिंदी-अनुवाद आज जनता के सामने रक्खा जा रहा है। इस में हमारे योग-शास्त्र की बड़ी ही सरल और क्रियात्मक व्याख्या है। मैंने योग-विषयक कई पुस्तकें हिंदी और संस्कृत में देखी हैं; परंतु जिस सरल और स्पष्ट रीति से यौगिक क्रियाएँ इस पुस्तक में समझाई

गई हैं, वह अन्यत्र बहुत कम मिलती है। इस विद्या के मर्मज्ञ अनेक भारतीय अभ्यासियों ने भी इसकी बड़ी प्रशंसा की है। उनकी सम्मति है कि इस पुस्तक का हिंदी-संस्करण हो जाने से योग-मार्ग के यात्रियों को अच्छी सहायता मिलेगी। इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने यह अनुवाद तैयार किया है। यदि अभ्यासी-जनों को इस अनुवाद से कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूँगा।

पुरानी बस्ती, होशियारपुर।
कृष्णाष्टमी, संवत् १९७९

संतराम

प्रस्तावना

तांत्रिक और दार्शनिक विषयों के अँगरेज़-विद्यार्थी को पूर्वी धर्म पथ-प्रदर्शक तारे का काम देते हैं। वे उन रहस्य-मय अज्ञात लोकों की ओर संकेत करते हैं, जिनको वह आनन्दपूर्वक खोजना चाहता है। इससे उसका मन पाश्चात्य जीवन की नीरस दौड़-धूप से उस धुँधली असतता की ओर ललचने लगता है, जो हिमालय के परे छिपी पड़ी है। कहते हैं, हिमालय में सदा से सिद्ध निवास करते हैं।

योग, जो ज्ञान-धर्म कहलाता है, निस्संदेह अनेक दृष्टियों से बहुत ही सुंदर है। पर यह स्वार्थ,-पर है; क्योंकि अपने उपासकों से सांसारिक कर्तव्य और उत्तरदायित्व छुड़ा देता है इसका तत्त्वज्ञान महान्, तथा इसके शिक्षार्थी अपने विश्वास में पक्के और पवित्र हैं। उनमें से अनेक ख़ासी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, और ऐसे चमत्कार दिखला सकते हैं, जिन पर पश्चिम के लोग मुग्ध हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो पवित्रता और भक्ति में तो इनसे कम नहीं हैं, परंतु जिन्हें अभी पूर्णता की उच्चावस्था प्राप्त नहीं हुई है।

इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि योगाभ्यास से शरीर पवित्र होता, स्वास्थ्य सुधरता और मन में बल आता है। केवल इन्हीं कारणों से इसकी सिफ़ारिश की जाती है। यद्यपि योग के अनेक आसन और दृष्टांत हमें असम्भव अथच हास्य-जनक मालूम होंगे; पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि पूर्वी विद्यार्थी के लिये कुछ भी असंगत और असम्भव नहीं। वह प्रायः बहुत छोटी

अवस्था ही में, जब उसके सभी अंग कोमल और लचीले होते हैं, अभ्यास का आरंभ कर देता है।

राज-योग में हठ-योग के आसनों और ऐंठनों की आवश्यकता नहीं। हठ-योग की बहुत-सी शिक्षाएँ ऐसी हैं, जिनसे हमें घृणा होती है। मैंने इस पुस्तक में दोनों के सिद्धांत और क्रियाएँ तो दी हैं, परंतु हठ-योग की कुछ बातें छिपा ली हैं। सिद्धांत की अपेक्षा अभ्यास को मैंने अधिक स्थान दिया है।

योग का अर्थ वास्तव में जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलाप, अंधकार पर प्रकाश की विजय और मनुष्य का अपनी प्रकृति से पशुपन को निकाल देना है। जो दर्शन मनुष्य को इस काम के करने में समर्थ बनाता है, वह इस योग्य है कि उसका अध्ययन किया जाय। यद्यपि विचारशील मनुष्य इन शिक्षाओं के बहुलांग को स्वीकार करते हिचकिचाएँगे, किंतु फिर भी वे इन्हें प्रधानतः उपयोगी पावेंगे।

मेरा विश्वास है कि उत्साही मनुष्य—यदि उसका उत्साह पर्याप्त रूप से दृढ़ हो—वे सब बातें कर सकता है, जिन्हें हिंदू-सिद्ध कर सकते हैं। वह अपने शरीर को हलका बनाकर आकाश में उड़ सकता है।

श्री कृष्ण हारा

कर्म-योग

पहला प्रकरण

॥ ॐ मनि पद्मे ॐ ॥

ओस-बिंदु द्युतिमान सिंधु में धीरे-धीरे जाता है ;
आत्मा मिलती है अनंत में, ऐक्य-भाव तब आता है।
उस अनंत का एक भाग है, जग में यह जीवन सारा ;
मिली अंतरात्मा मुझ में भी, मैं न कभी उससे न्यारा ।

शांति अलौकिक पा लेने पर, निश्चलता में जाता हूँ ;
ज्ञान-प्रकाश जगाकर फिर मैं, बोध "अस्ति" का पाता हूँ ।
अब आत्मा में धीरे-धीरे मन भी मिलता जाता है ;
ओस-बिंदु द्युतिमान सिंधु में धीरे-धीरे जाता है ।

ओस-बिंदु द्युतिमान सिंधु में धीरे-धीरे जाता है ;
गभीरता में गहरी-गहरी निश्चलता को पाता है ।
अहंकार का ज्ञान गया सब, तेरा-मेरा नहीं रहा ;
मैं-तू एक हो गये जब, तब लेश भिन्नता का न रहा ।

"बाल"

परिभाषाएं

विकास की पूर्वी विधियाँ प्रत्येक बात में पाश्चात्य लोगों के अनुकूल नहीं; परंतु प्रत्येक सच्चे उत्साही शिक्षार्थी का लक्ष्य एक होने के कारण यह वस्तुतः केवल रूपांतर का प्रश्न है।

शिक्षार्थी में तत्परता और दीर्घोद्योग, इन दो गुणों का होना परम आवश्यक है, अन्यथा उसे कभी सफलता न होगी। जिस पाश्चात्य मनुष्य में ये गुण हैं, वह, मेरा विश्वास है, न केवल योग की उच्च अवस्थाओं ही को प्राप्त कर सकता है, वरन् अपना सांसारिक कारोबार करते हुए भी योग कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय योगी अपना सारा समय अभ्यास में लगाता है; परंतु साधारण मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता, और यह आवश्यक भी नहीं। साधारण मनुष्य के लिये कदाचित् राज-योग का अभ्यास सब से अधिक चित्ताकर्षक है। हठ-योग की बहुत सी बातें योरपीय बुद्धि को घृणित मालूम होती हैं।

शिक्षार्थी उस विशेष आध्यात्मिक शांति की प्राप्ति को अपना लक्ष्य बना सकता है, जो लंबी-लंबी समाधियों, उच्च विचारों, और दिव्य आदर्शों के अभ्यासी मनुष्य पर चादर की तरह छा जाती है; अथवा वह चमत्कार दिखलाने को

अपना लक्ष्य बना सकता है, जिसे अनेक—सब नहीं—हिंदू योगी कर सकते हैं।

मैं अँगरेज़ों को जानती हूँ; यह भी जानती हूँ कि वे इन चमत्कारों के लिये शोर मचाने लगेंगे। इसलिये मैं यह कह देना चाहती हूँ कि यद्यपि इनका करना असंभव नहीं, फिर भी यह काम उतना सुगम नहीं, जितना सुगम यह ऊपर से दिखाई देता है। इसके लिये पूर्वोल्लिखित प्रकार के विकास की अपेक्षा अधिक कड़ी तपस्या और दीर्घ प्रयास की आवश्यकता है। शिक्षार्थी को विलासिता छोड़ देनी चाहिए, और यथासंभव शांत तथा नियमित जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करना चाहिए; परंतु जैसा कि मैं पहले कह आई हूँ, यह बात उसके साधारण काम-काज एवं सुख में भी बाधक न होनी चाहिए।

योगाभ्यास की पहली दो सीढ़ियाँ साधारण सङ्कल्प-शक्तिवाले मनुष्य के लिये पर्याप्त-रूप से सुगम हैं। पहली सीढ़ी का नाम यम और दूसरी का नाम नियम है।

यम तो प्रायः मनुष्य-मात्र में स्वाभाविक रूप से पाई जानेवाली दुष्टता के विरुद्ध युद्ध है। शिक्षार्थी के लिये सच्चा, ईमानदार, और ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। ईमानदार बनना सुगम है; परंतु सच्चा, और ब्रह्मचारी बनने के लिये बहुत से लोगों को भारी प्रयत्न और अपनी नीच वृत्तियों के साथ घोर संग्राम करना पड़ेगा। सचाई

का अर्थ पूर्ण सत्य, और ब्रह्मचर्य का अर्थ पूर्ण ब्रह्मचर्य होना चाहिए। अभ्यासी को किसी से दान और उपहार न लेना चाहिए। उसे किसी की हत्या न तो स्वयं करनी चाहिए, और न किसी दूसरे ही से करानी चाहिए। नियमों में सब से प्रधान शारीरिक स्वच्छता और विशेष नैतिक गुणों का उत्पन्न करना है। योगी इन बातों का जितना भी ध्यान रक्खे, थोड़ा है। उसके वस्त्र बिलकुल स्वच्छ, और शरीर पवित्र रहना चाहिए।

अभ्यासी में संतोष होना चाहिए। जो कुछ हो रहा है, मेरे कल्याण के लिये हो रहा है—इस बात का अनुभव कर उसे विपत्तियों में बड़बड़ाना छोड़ देना चाहिए। उसे ईश्वर-सिद्धि में अपना जीवन लगाना चाहिए; क्योंकि उसका लक्ष्य परमात्मा का मिलाप है।

यह बात स्मरण रहनी चाहिए कि योगी मूक पशुओं पर भी मनुष्य के समान ही दया दिखाता है। वह किसी प्रकार भी किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता। इस विषय पर योरपीय लोगों को कुछ ध्यान देने की आवश्यकता है; क्योंकि इससे उनके लिये सब प्रकार का मांस-भक्षण छोड़ देना आवश्यक हो जाता है, यद्यपि यह बहुतेरे लोगों को बड़ी भारी बात जान पड़ती है। मेरी सम्मति में शिक्षार्थी को भोजन में धीरे-धीरे परिवर्तन करना चाहिए।

एक दम भोजन-परिवर्तन से स्वास्थ्य में भारी गड़बड़ी हो जाने की आशङ्का है।

ये छोटी-छोटी बातें, यद्यपि ऊपर से तुच्छ जान पड़ती हैं, तथापि ये पहली सीढ़ियाँ हैं, और इनपर ही शिक्षार्थी की सफलता अथवा विफलता बहुत-कुछ निर्भर है। आरंभ में सफलता हो जानेसे छोटी-छोटी बाधाओं को दूर करने के लिये प्रोत्साहन मिलता और आगे बढ़ने तथा मार्ग में आनेवाली बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करने का साहस उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् हमें आसन, अर्थात् बैठने समय योगाभ्यासी के शरीर की स्थिति पर, और उन अभ्यासों पर विचार करना है, जिनका अनुष्ठान वह तब तक जारी रखता है, जब तक उसका मन और शरीर उसकी इच्छा के वशीभूत नहीं हो जाते।

इसके बाद है प्राणायाम, अर्थात् श्वास को वश में और नियमित करना। यह बड़ा ही आवश्यक डग है। यह बात हमें अगले प्रकरणों में मालूम होगी। प्रत्याहार का अर्थ पशु-बुद्धि को पूर्ण-रूप से वश में कर लेना—आत्म-परीक्षण का अभ्यास—है।

इन पाँच प्रारंभिक सीढ़ियों का संबंध शरीर से है।

आगे हमें उन सीढ़ियों पर विचार करना है, जिनका संबंध मन को वश में करने के साथ है। पहले धारणा, अर्थात् चित्त की एकाग्रता, दूसरे ध्यान, अर्थात् मन को

किसी एक ही विषय पर स्थिर करना है। इसके बाद समाधि अर्थात् पूर्ण एकाग्रता प्राप्त होती है। इसमें मन, एक विषय में इतना मग्न हो जाता है कि उसे सभी बाहरी बातें और अवस्थाएँ भूल जाती हैं। अंत को निर्विकल्प समाधि है, अर्थात् जीवात्मा का परम-आत्मा के साथ मिलाप प्राप्त होता है।

इस विषय को मैंने थोड़े से ही शब्दों में वर्णन किया है। अगले पाठों में मैं यथाशक्ति स्पष्ट रीति से यह दिखलाने का उद्योग करूँगी कि अभ्यासी इन विविध अवस्थाओं को कैसे प्राप्त कर सकता तथा पूर्णता की उस अवस्था को कैसे पहुंच सकता है, जो इस दर्शन का लक्ष्य और योगाभ्यास का प्रयोजन है।

पतंजलि ने योग का लक्षण चित्त के व्यापारों को रोक लेना बतलाया है; क्योंकि हिंदू, विचार को एक भ्रम और संसार को विचार-मूर्तियों से उत्पन्न होनेवाली एक कल्पित सृष्टि समझते हैं। इसलिये विचार के व्यापारों को छोड़ देने से वह स्वभावतः ही सांसारिक बंधनों और उन सब भ्रमों और जालों से, जो उसे इस संसार के साथ बाँधे रखते तथा स्वर्ग में जाने एवं शांति-लाभ करने से रोकते हैं, मुक्त हो जाने की आशा करता है। इस लक्षण पर विचार करने से यह बात तुरंत ही स्पष्ट दिखाई देने लगती है कि योग की मुख्य-मुख्य क्रियाओं का लक्ष्य इस अवस्था की प्राप्ति ही है।

साधारण मनुष्य का चित्त उसके वश से बिलकुल बाहर होता है। उसका अपने विचारपर तो कुछ भी अधिकार नहीं होता, उल्टे साधारण मानसिक व्यापारों को अधिकारमें रखने के बजाय वह अपने विचारोंका दास हो जाता है। जिन विचारोंको वह चाहता और जिनकी कामना करता है, उनको अपने पास रखना और उनसे काम लेने में समर्थ होना तो दूर अनिष्ट विचारों को भी वह दूर नहीं भगा सकता।

मन में किसी प्रकार के विचार न उठने देना और आत्मा में विलीन हो जाना साधारण मनुष्य के लिये उतना ही असंभव है, जितना छलाँग मारकर चंद्रमा में जा पहुँचना।

दूसरा प्रकरण

योग की प्रारंभिक बातें बता चुकने पर अब मैं पहले उन विघ्न-बाधाओं का वर्णन करता हूँ, जो, पतंजलि के मतानुसार, अभ्यासी के मार्ग में पड़कर उसे सिद्धि से रोकती हैं।

वे ये हैं—

रोग, आलस्य, संशय, प्रमाद, अशुद्ध उपलब्धि, जड़ता, विषयासक्ति, भोग-विलास, एकाग्रता न प्राप्त कर सकना, और प्राप्त हो जाने पर उसका स्थिर न रहना।

साधारण मनुष्य की अपेक्षा शिक्षार्थी पर अधिक प्रलोभन निश्चय ही धावा करते हैं। इसका कारण केवल यही है कि उसका चित्त अपनी सारी शक्ति से कामना को निकाल डालने पर लगा रहता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि वह उन विषयों का बहुत अधिक चिंतन करता है, जिनको चित्त, साधारण अवस्थाओं में अधिक ध्यान किए बिना ही विदा कर देता है। अवश्य ही उसका कार्य अधिक कठिन हो जाता है; क्योंकि छोड़े हुए "पाप" विचार, भाव, तथा मनोविकार सब इतने ज़ोर से जग उठते हैं कि उन्हें दबाना सुगम नहीं होता।

अभ्यासी के लिये अविवाहित रहना आवश्यक नहीं, परंतु अव्यभिचारी होना अनिवार्य है। सब से पहले काम को वश में करना ज़रूरी है; पर इसको दबाने के यत्न करने का एक-मात्र परिणाम यह होता है कि सोया हुआ सिंह जग उठता है।

चित्त में किसी प्रकार की घृणा, विद्वेष और अनुदारता न होनी चाहिए। चेला किसी के प्रति न कभी बुरे शब्द कहे, और न बुरा चिंतन करे। उसे अपने ही भाग्य से संतुष्ट रहने की चेष्टा करनी चाहिए। वह न तो हर्ष से बहुत फूल ही जाय, और न शोक से अनुचित रूप से खिन्न ही हो जाय।

सारांश, उसे अपने चित्त को शांत और प्रसन्न रखना

चाहिए। बाहर की बातें उसे अशांत न करने पावें। उसे सांसारिक और पार्थिव विषयों की चिंता छोड़ देनी चाहिए, जिससे वह पवित्रता की उस अवस्था को प्राप्त करने में अधिक समर्थ हो, जो उसका चरमोद्देश्य है।

चेले पर आक्रमण करनेवाले मोह और जिन पापों से सिद्धि की प्राप्ति में बाधा पड़ती है, उन्हें दबाने के लिये पतंजलि ने अनेक विधियाँ दी हैं।

इनमें से दो को मैंने बहुत उपयोगी पाया है। अस्तु, इस छोटी-सी पुस्तिका में शेष विधियों के बताने का कोई प्रयोजन नहीं।

एक अभ्यास का नाम प्राणायाम है। इसका वर्णन मैं आगे चलकर करूँगी। दूसरा अभ्यास है मन को शरीर के किसी भाग पर स्थिर करना, और उसे तब तक वहीं जमाए रखना, जब तक प्रलोभन न जाता रहे। मन को स्थिर करने के स्थान, उदाहरणार्थ, ये हैं—हृदय की भीतरी कोठरी, नाक की नोक, इत्यादि।

अनेक योगी 'ॐ'-शब्द का उपयोग करते हैं। इसके बार-बार जपने से मनोवांछित फल होता है। इसके अतिरिक्त इस जप से वे शुद्ध और पवित्र भी हो जाते हैं

इन बातों को पूरा कर लेने के बाद फिर आप को आसन के अभ्यास का यत्न करना चाहिए; परंतु स्मरण रहे कि ये बातें एक घंटे अथवा एक दिन में, एक

मास अथवा एक वर्ष में, नहीं हो जातीं। हाँ, इस में कुछ संदेह नहीं कि कई लोगों को दूसरों की अपेक्षा कम समय लगता है।

आसन के लिये आरंभ में केवल बहुत सरल अभ्यास करना और एक बार में अधिक देर तक न बैठना चाहिए।

कोई सुख-दायक स्थान चुनो। इस प्रकार बैठो कि रीढ़ की हड्डी पूर्ण-रूप से सीधी, छाती बाहर को निकली तथा ऊपर को उठी हुई, एवं ठोढ़ी छाती को ओर अंदर को घुसी हुई रहें।

इस स्थिति में बैठ जाने पर चेला बहुत धीरे-धीरे अपने श्वास को नियम में लाने का यत्न कर सकता है। इसकी अनेक विधियाँ हैं; परंतु मैं समझती हूँ कि आरंभ में सबसे अच्छी यह है—

उपर्युक्त ढंग से बैठकर मुँह बंद कर लेना।

अब नासिका में से बहुत धीरे-धीरे और सम-रूप से नाक से श्वास भीतर खींचो; जहाँ तक हो सके, श्वास को तानो। जब फेफड़े पूर्ण-रूप से भर जाँय, तब उसी प्रकार धीरे-धीरे साँस को बाहर निकाल दो।

उतावली बिलकुल न होनी चाहिए, और न साँस में हिचकी मारना चाहिए। आप का एक-मात्र लक्ष्य यह होना चाहिए कि जहाँ तक संभव हो सके, धीरे-धीरे

और सम-रूप से साँस भीतर खींची जाय। उसमें किसी प्रकार की ध्वनि न हो।

यों कल्पना कीजिए कि श्वास एक सफ़ेद रंग की सूक्ष्म भाफ़ है, जिसे आप धीरे-धीरे भीतर खींचकर उससे फेफड़ों को क्रमशः भर रहे हैं। इससे आपको प्राणायाम में सहायता मिलेगी।

श्वास के बाहर निकलने को भी उसी प्रकार ध्यान-पूर्वक देखो।

इस सरल अभ्यास को कुछ मास तक, अथवा तब तक जारी रक्खो, जब तक कि आप साँस को भीतर खींचने और उसे बाहर निकालने के समय को चार से आठ मिनट तक बढ़ाने में समर्थ न हो जाँय।

यदि आप आरंभ में इसे तीस सेकंड तक लंबा कर सकें, तो समझिए कि आप अच्छी उन्नति कर रहे हैं। कारण यह कि बहुत से लोगों को यह पता तक नहीं कि साँस कैसे लेनी चाहिए। वे फेफड़ों को उचित व्यायाम कभी नहीं देते।

एक और विधि यह है कि कानों में अँगूठे देकर, आँखों पर तर्जनी (अँगूठे के पास की उँगली) रखकर, नथुनों पर मध्यमा, और मुँह पर मध्यमा के पास की उँगली धर-कर इन्हें बंद कर दो।

अब चेले को चाहिए कि एक नथुने पर से एक उँगली

उठावे, और बहुत धीरे-धीरे साँस को भीतर खींचे। जब फेफड़े पूरी तरह से भर जाँय, तो उस नथुने को फिर बंद कर दे। फिर साँस को थोड़ी देर भीतर थामकर धीरे-धीरे सम-रूप से बाहर निकाल दे।

इस प्रकार यदि तुम दाएँ नथुनेमें से साँस लो, तो उसे बाएँ में से बाहर निकालो, और बाएँ में से लो, तो दाएँ में से।

कहते हैं, इस से शरीर की शुद्धि होती है, और बहुधा अभ्यास के समय बड़े-बड़े सुंदर स्वप्न दिखाई देने लगते हैं।

कभी-कभी गुरु नथुनों के बंद होते ही साँस को निगल जाने की सिफ़ारिश करता है। यदि साँस को ठीक तौर से निगला जाय, तो इससे मुँह और नाक की नली में शून्यता उत्पन्न हो जाती है, जिससे कानों में भिनभिनाहट और 'सायँ-सायँ' की ध्वनि होने लगती है। मुझे यह बड़ी अरुचि-कर जान पड़ती है।

ये सब अभ्यास क्रमशः करने चाहिए। मेरा संकेत विशेष-रूप से प्राणायाम की ओर है; क्योंकि यदि चेला आरंभ में बहुत अधिक के लिये यत्न करेगा, तो यह बिलकुल संभव है कि इससे उसे हानि पहुंचे, और उस के फफड़े कठिन परिश्रम से थक जायँ, या उन में घाव हो जायँ।

प्राण को वश में करने का उद्देश्य और प्रयोजन इस

भौतिक शरीर में व्याप्त परमात्मा के साथ मिलाप के अवसर की प्राप्ति है।

पहले-पहल आप को कदाचित कुछ भी दिखाई न दे; आँख के ढेलों पर आप की उँगलियों के दबाव के कारण कभी-कभी केवल एक निविड़ कालिमा का अनुभव हो। परंतु कालांतर में यह कालिमा धीरे-धीरे अन्तर्द्धान हो जाता है, और एक अतीव तेजोमय शुभ्र ज्योति—ऐसी ज्योति. जिसके समान स्थल और जल पर कभी दूसरी देख नहीं पड़ी—प्रकट होती है। इस दिव्य आलोक में चेला स्वप्न, लेख, इत्यादि देखता है। इनसे वह बहुत कुछ सीख सकता, और विकास की इस अवस्था का ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है।

इन में से कुछ स्वप्न तो सांकेतिक होते हैं, और कुछ अनूठा सौंदर्य लिए हुए हैं। फिर कई स्वप्न निरर्थक, केवल कल्पना-शक्ति ही की उपज-से होते हैं।

परंतु इस तेजोमंडल को देखने, और भीतर के दिव्य केंद्र (आत्मा) तक पहुँचने के उद्देश्य से ही प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है।

प्रत्येक अभ्यास में बीस बार प्राणायाम करना चाहिए, और प्रति-दिन चार बार—प्रातः, मध्याह्न, सूर्यास्त के समय और आधी रात को—अभ्यास करना चाहिए।

यदि चेला धन के साथ इसका अभ्यास करता रहेगा,

तो तीन मास के पश्चात् उसका शरीर शुद्ध हो जायगा, और उसे न केवल उपर्युक्त प्रकाश ही दिखाई देने लगेगा, वरन् वह योग का सच्चा अभ्यास भी आरंभ कर सकेगा।

मैं यहाँ यह बता देती हूँ कि दायाँ नथुना 'पिंगला' और बायाँ 'इडा' कहलाता है। इन नामों को स्मरण रखने से भविष्य में उनका उल्लेख करने में सुगमता रहेगी। प्राणायाम का उद्देश्य मस्तिष्क के व्यापार को स्थिर करना, वहाँ इकट्ठी होने वाली विशृंखलित विचार-मूर्तियों को दबाना, और सुव्यवस्थित श्वासोच्छ्वास से हृदय की स्वाभाविक क्रिया को इस प्रकार घटाना है, जिससे मस्तिष्क में रक्त का स्थिर और खरा प्रवाह बहने लगे। परंतु जब तक मनोविकार और चित्त-क्षोभ शरीर को खा रहे हैं, तब तक यह असंभव है।

प्रेम, रोष, घृणा और मत्सरता. सब का रक्त पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। इनके कारण कभी वह उमड़ आता है, कभी घट जाता है। इससे मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह एक-रूप न रहकर, वायु में दीपक की लौ के सदृश फड़-फड़ाता और घटता-बढ़ता रहता है। अब आगे चलने के पहले ज़रा योग-दर्शन को समझ लीजिए।

हिंदू योगीका मत है कि विश्व-ब्रह्मांड की वे सब चीज़ें, जिन का हमें ज्ञान है, वे सब चीज़ें, जिनका हम अनुमान करते हैं, और वे सब बातें, जो हमारी समझ से सर्वथा परे हैं,

समान-रूप से सब-की-सब, एक ही स्रोत—ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर—से निकली हैं।

ज्ञान-स्वरूप परमात्मा, काल और देश की सीमा से परे है। वह सब पदार्थों में व्यापक है; पर उनके साथ मिश्रित नहीं होता। वह नित्य और अविनाशी है। वही एक यथार्थ सत्ता है, शेष सब अलीक और माया है।

यही माया विश्व की जननी कहलाती है—अर्थात् यह विश्व माया का बना है; और जब हम माया को नष्ट कर डालते हैं, तब इसके साथ ही जगत् का नाश हो जाता है। दूसरे शब्दों में, यह जगत् केवल कल्पना और असत् का फल है। जब हम मस्तिष्क की इस रचना को नष्ट कर देते हैं, तब जो चीज़ पहले ऐसी सत्य और ठोस प्रतीत होती थी, वह कल्पना और भाफ़-मात्र पाई जाती है।

दूसरी दृष्टि से, योगदर्शन का सार इस प्रकार बताया जा सकता है कि सब वस्तुएँ, जो ऊपर से सत्य दिखाई देती हैं, अनित्य हैं; और केवल वेही वस्तुएँ सत्य हैं, जो आध्यात्मिक हैं। यही शिक्षा बाइबिल भी देती है।

ब्रह्म ही एक-मात्र पूर्ण सत्ता है। शेष सब अपूर्ण है।

आत्मा से सब वस्तुएँ निकलती हैं। शिव-संहिता में उन का निकलना इस क्रम से बतलाया गया है—

ब्रह्मा से आकाश निकला; आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई।

इसी पुस्तक में अन्यत्र फिर दिया हुआ है कि आकाश में एक गुण है, वायु में दो, अग्नि में तीन, जल में चार, और पृथ्वी में पाँच ; अर्थात् शब्द, रस, स्पर्श, रूप और गंध। इनका ज्ञान हमें उनका अनुभव करने से होता है।

हिंदू-धर्म की पोथियों में कहा गया है कि मनुष्य की आत्मा, अपने पूर्व कर्मों के अनुसार, बार-बार जन्म लेती है। हमारा वर्तमान शरीर, हिंदुओं के मतानुसार, दंड की एक अवस्था, या पहले जन्म में किए हुए पूर्व पापों के दंड भोगने का साधन है। यह आत्मा के लिये एक प्रकार का कारावास या प्रायश्चित का स्थान है। हिंदू, शरीर को ब्रह्म का निवास मानते हैं। वे कहते हैं, यह सुखों को भोगने, अथवा दुःखों को झेलने के लिये बना है।

इस जन्म में मनुष्य को जितना सुख या दुःख मिलता है, वह उस के पूर्व जन्म में किए हुए अच्छे-बुरे कर्मों का फल है।

इस प्रकार वे संसार में मनुष्यों के सुखी-दुखी, राव-रंक, और पंडित-मूर्ख होने का समाधान करते हैं।

संसार की प्रत्येक वस्तु पाँच तत्त्वों से बनी है। उसमें जो चेतना-शक्ति है, वह जीव है, अर्थात् कर्म के अच्छे और बुरे फलों को भोगने वाला।

यह जीव सब चीज़ों में है, अर्थात् विविध नामों से सब वस्तुओं में यही चेतना-शक्ति है। जन्म-जन्मांतर में उन्नति

करते-करते जीव जब कर्म भोग चुकता है, तब परमात्मा में फिर लीन हो जाता है।

यहाँ मैंने थोड़े से शब्दों में योग-दर्शन का वर्णन कर दिया है। इस तत्त्व-ज्ञान का थोड़ा-सा परिचय प्राप्त करा देने और यह बतला देने के बाद कि सिद्धि के मार्ग पर पग धरनेके पहले चेले के लिये किस प्रकार के आचरण की आवश्यकता है, अब मैं संक्षेप में क्रियात्मक बातें पूरी-पूरी व्याख्या के साथ आप को बताऊँगी।

हिंदू-योगी को एक ऐसा प्राणी कहा जा सकता है, जो सब वस्तुओं से प्रेम तो करता है, पर उन में लिप्त नहीं होता; क्योंकि उसका जीवन भौतिक विषयों से ऊपर होता है और जिस सीमा तक वह रीति में बँधा होता है, उसे छोड़कर अपने दैनिक जीवन में ऐसी बातों में नहीं घुसता। बहुत उच्च कोटि के चेले और गुरु जनता से क्वचित् ही मिलते हैं। वे एकांत में रहते हैं। उनके पास पहुँचना बहुत ही कठिन होता है।

तीसरा प्रकरण

योग का अभ्यास करने के लिये यह आवश्यक जान पड़ता है कि हम मनुष्य-शरीर के विशेष भागों पर कुछ ध्यान दें। मैं आप के सामने हिंदू-मत के अनुसार इन भागों का

यथा-शक्ति स्पष्ट-रूप से वर्णन करने का यत्न करूँगी। यह वर्णन हमारे पश्चिमी शरीर-शास्त्र से थोड़ा-सा भिन्न है।

मेरुदंड वह केंद्र है, जिसके इर्द-गिर्द शेष सब घूमते हैं। नाड़ियों के विविध केंद्रों का भी विशेष मूल्य है।

इन केंद्रों को मुक्त और विकसित करने के प्रयोजन से, विशेषकर मेरुदंड के भीतर के मार्ग को खोलने के लिये ही ये सभी क्रियाएँ और अभ्यास किए जाते हैं।

मैं इनकी व्याख्या सरल भाषा में करने का यत्न करती हूँ।

मेरुदंड केंद्र है। इस की चोटी पर नाड़ियों का एक केंद्र है, जिस का नाम है 'सुधांशु-मंडल'।

इस सुधांशु-मंडल या केंद्र से निरंतर अमृत-रस बरसता है। यह रस दो भागों या धाराओं में बँटकर नीचे की ओर बहता है। इन में से एक धारा मेरुदंड के बाईं ओर जाती है, और यही 'इडा' कहलाती है, जिसका उल्लेख मैं नथुनों के संबंध में पहले कर आई हूँ। दूसरी किरण मेरुदंड में से गुज़रती है। इसका नाम 'सुषुम्णा' है।

इस मेरुदंड के मूल में 'सूर्य' नाम का एक केंद्र है। इस में से, मेरुदंड के दाईं ओर वह मार्ग जाता है, जिसमें से इस 'सूर्य'-मंडल की किरणें ऊपर को उठती हैं। इस प्रकार नाड़ी-बल, शक्ति की एक निरंतर धारा के रूप में एक ओर से नीचे उतरता, और दूसरी ओर से ऊपर चढ़ता है।

इससे यह मालूम हो गया होगा कि हिंदू प्रधानतः दो

बड़े नाड़ी-केंद्र मानते हैं—एक तो मस्तिष्क के मूल और मेरुदंड की चोटी पर, दूसरा मेरुदंड के मूल में, जिसे मूलाधार-चक्र कहते हैं।

प्रधान नाड़ियाँ, जिन पर विचार किया जाता है, चौदह हैं; परंतु इनमें से केवल तीन ही—सुषुम्णा, इडा, और पिंगला—वास्तविक महत्व रखती हैं। इन तीन में भी सुषुम्णा, अर्थात् मेरुदंड के बीचों-बीच का मार्ग मुख्य है।

इस मार्ग का महत्व उस समय जान पड़ेगा, जब हम अभ्यास का वर्णन करेंगी।

ये सब नाड़ियां बारीक धागों के सदृश हैं। रीढ़ की हड्डी के सहारे ये ठहरी हुई हैं, और सूर्य, चंद्रमा तथा अग्नि की प्रतिनिधि मानी जाती हैं।

सुषुम्णा के मध्य में 'चित्र'-नाम की एक खोखल है। इसी में दिव्य आत्मा निवास करती है। यह केंद्र संभवतः, सारे जीवन और प्राण-शक्ति का स्थान है।

मेरुदंड के मूल में-मूलाधार, चक्र के प्रदेश में-'अधर'-कमल है। इसमें भगवती कुंडलिनी निवास करती है। यह उत्पादन-शक्ति को दिखलाती है। 'इडा' नाड़ी बाईं ओर है, और, सुषुम्णा के गिर्द कुंडली मारे दाएँ नथुने को जाती है। 'पिंगला'-नामकी नाड़ी दाईं ओर है, और उसी प्रकार 'सुषुम्णा' के गिर्द कुंडली मारे बाएँ नथुने में प्रवेश करती है।

सुषुम्णा के विकास के ६ दर्जे हैं। उनमें से केवल पहले पाँच ही बताए जा सकते हैं।

अब जीव, कर्म से बँधे हुए भौतिक शरीर में रहता है। वह कभी समाप्त न होनेवाली कामनाओं से जकड़ा हुआ है। उसमें वे सब बदलते रहनेवाले गुण हैं, जिन से मनुष्य बनता है।

जीवन में मनुष्य के साथ जो भी घटनाएँ घटती हैं, वे सब कर्म-फल हैं; और इस जन्म में जितनी भी कामनाएँ उत्पन्न होती हैं, वे जीव के पूर्व कर्मों के अनुसार ही हर्ष-शोक पैदा करती हैं।

इस प्रकार जिस जीव ने अतीत काल में पुण्य-कर्म किए हैं, उसे इस जीवन में सुख और आराम मिलता है; जिसने पूर्व जन्म में पाप कर्म किए हैं, उसे वर्तमान जीवन में बहुत-से दुःखों और कष्टों का सामना करना पड़ेगा।

शिक्षार्थी को यह बात न भूल जानी चाहिए कि योगी का उद्देश्य अब इस प्रकार जीवन व्यतीत करना है, जिस से और कर्म न उत्पन्न हों; और वह कर्म को उत्पन्न करनेवाली कामनाओं को नष्ट कर सके, जिस से उसका दूसरा जन्म न हो। केवल ज्ञान के द्वारा ही सब कामनाओं और मनोविकारों का नाश हो सकता है, और शेष सब गुणों को नष्ट कर देने ही से यथार्थ तत्त्व या प्रकृति का विकास और अभिव्यक्ति हो सकती है।

इस में संदेह नहीं कि पूर्व में शिक्षार्थी को कभी भी गुरु की सहायता के बिना अभ्यास आरंभ करने का विचार नहीं होता ; परंतु पश्चिम में शिक्षार्थी अपने-आप अभ्यास आरंभ कर आशा कर सकता है कि जब वह इच्छा करेगा, गुरु उसे आप ही मिलेगा।

जिन्हें सौभाग्य से गुरु मिल गया है, उन्हें इस पुस्तक की आवश्यकता नहीं; परंतु यह बता देना आवश्यक है कि शिक्षार्थी को बड़े नम्र भाव से गुरु-सेवामें जाना चाहिए, और वहाँ अपनी विद्वता दिखलाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

चेले को बड़ी श्रद्धा और भक्ति से गुरु की सेवा करनी चाहिए। पूर्व में यह रीति है कि महात्मा के चेले उस की सब आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। ये आवश्यकताएँ साधारण होती हैं।

जो मनुष्य योगाभ्यास करना चाहता है, उसे, यदि संभव हो. तो किसी एकांत स्थान में जाना चाहिए, जहाँ वह प्रकृति की गोद में बैठ सके। यदि उसकी अवस्था ऐसा अवसर न दे, तो उसे कोई ऐसी जगह ढूंढ़नी चाहिए, जहाँ कोई और दूसरा न हो।

तब वह निम्न-लिखित ढंग से बैठे—

पलथी मारकर। उस की टाँगें एक-दूसरे को इस प्रकार वार-पार करें कि जाँघों को छू सकें। दायाँ हाथ बाएँ हाथ पर धरा हो। तब जीभ को लपेटकर तालू के साथ

लगा ले, और इसे वहीं स्थिर रक्खे; परंतु दाँतों को मिलने नहीं देना चाहिए, और दोनों नेत्रों से नाक की नोक को निरंतर देखते रहना चाहिए।

इस स्थिति में, शिक्षार्थी, दूसरे प्रकरण में लिखी विधि के अनुसार, प्राणायाम का अभ्यास करे। इसके चार दर्जे हैं— आरंभ, समाधि, ज्ञान, और सिद्धि।

ध्यान देने पर शिक्षार्थी को मालूम हो जायगा कि कभी तो वह बिलकुल बाएँ नथुने से, और कभी दाएँ से ही साँस लेता है। भोजन उस समय करना चाहिए, जब श्वास पिंगला की दाईं नासिका, अथवा सूर्य में से बह रही हो। जब साँस बाएँ नथुने, इडा या चंद्रमामें से बड़ी सुगमता के साथ चल रही हो, तब उसे सोना चाहिए।

ख़ाली पेट प्राणायाम न करना चाहिए, और न भोजन के झट बाद ही। अभ्यास आरंभ करने के ठीक पहले गरम दूध में थोड़ा-सा घृत डालकर पी लेना चाहिए। शिक्षार्थी देखेगा कि प्राणायाम से पहले-पहल किसी क़दर पसीना आने लगता है; दूसरी अवस्था में शरीर ज़ोर से काँपने लगता है; तीसरी अवस्था में शरीर उछलता और चौथी अवस्था में जब चेला पर्याप्त उन्नति कर लेता है, आकाश में उड़ सकता है।

जब वह उड़ने में समर्थ हो जाता है, तो कहा जाता है कि उसने वायु पर विजय प्राप्त कर ली। जब तक वह उड़ने

में पूरा समर्थ न हो जाय, उसे प्राणायाम का अभ्यास जारी रखना चाहिए।

जब वह नए अभ्यासी की अवस्था से गुज़रकर सिद्ध बन जायगा, तब प्राणायाम के द्वारा अपने वर्तमान तथा पूर्व-जन्मों के कर्मों को नष्ट कर डालने में समर्थ होगा।

कहते हैं, योगी को ये शक्तियाँ प्राप्त होजाती हैं—भविष्य-वाणी करना, इच्छा होने पर अपने शरीर को चाहे जितनी दूर ले जाना, अनुपस्थित व्यक्तियों और वस्तुओं को देखना, दूर देश में होनेवाले शब्द को सुन लेना, दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की शक्ति, घटिया धातुओं को स्वर्ण में बदल देने की शक्ति, किसी को दिखाई न देने, और वायु में उड़ने की शक्ति।

जब अभ्यासी विकास की उस अवस्था को पहुँच जाता है, जब वह दो तीन घंटे तक साँस रोक सके, तब कह सकते हैं कि उसे सारी सिद्धि प्राप्त हो गई। अब उसके लिये कोई भी बात असंभव नहीं।

मैं नहीं समझती कि अनेक योरपियन कभी यह कर सकेंगे। इस काम के लिये जितना समय देने की आवश्यकता है, वास्तव में बहुत थोड़े योरपीय उतना समय दे सकते हैं। परंतु मान लीजिए कि एक योरपीय उतना समय दे सकता है, तो मैं कोई कारण नहीं समझती कि वह इस बाहर से असंभव दिखाई देनेवाले कौतूहल को क्यों न पूरा कर सकेगा।

शिक्षार्थी को प्रति-दिन वायु पान करना चाहिए, क्योंकि इससे वह अपनी सारी थकावट और बुढ़ापा दूर कर सकेगा।

मुँह बंद कर लिया जाता है, जीभ को दाँतों के समीप तालू के साथ ज़ोर से लगा लिया जाता है, दाँत मज़बूती से भींच लिए जाते हैं, और वायु की नली को बंदकर नथुनों में से बहुत धीरे-धीरे वायु को पिया, अर्थात् साँस को भीतर खींचा जाता है, घूँट-घूँट कर वायु अंदर ली जाती है। जब चेला मन में यह चित्र खींचकर कि हवा कुंडलिनी में जा रही है, सायं और प्रातः इस अभ्यास को करता है, तो और रोगों के अतिरिक्त राजयक्ष्मा रोग भी दूर हो जाता है। जब चेला दिन-रात इस रस (पवन) को पी सकता है, तब वह अनुपस्थित वस्तुओं को देखने और दूर देश में होनेवाले शब्द को सुनने की शक्ति प्राप्त कर सकता है। जो भी मनुष्य ६ मास तक इसका नियम-पूर्वक अभ्यास करता है, उसके सब रोग दूर होजाते हैं और वह पाप से मुक्त हो जाता है। एक वर्ष तक इस अभ्यास को जारी रखने से वह तत्त्वों को जीत सकता और उनसे अपनी आज्ञाओं का पालन करा सकता है।

चौथा प्रकरण

योग के शिक्षार्थी विविध प्रकार के अभ्यासों में से कम-से-कम चौरासी प्रकार के भिन्न-भिन्न आसनों का व्यव-

हार करते हैं; किंतु योरपीय अभ्यासी के लिये उनमें से केवल निम्न-लिखित ही आवश्यक हैं—

प्रौढ़ व्यक्ति के लिये वे सुगम नहीं; क्योंकि एक बार जब हड्डियाँ अपने स्थान पर बैठ जाती हैं, तब अंगों की असाधारण ऐंठन कठिन हो जाती है। वास्तव में आसनों का अभ्यास तरुणावस्था में ही आरंभ हो जाना चाहिए। फिर भी निरंतर अभ्यास करते रहने से प्रौढ़ शिक्षार्थी भी यदि अध्यवसाय से काम ले, तो इन कठिनाइयों को जीत सकता है।

पहला आसन सिद्धासन कहलाता है। योगी पलथी मारकर, टाँगों को अपने नीचे ले जाकर बैठता है। उसकी एड़ियाँ गुदा को दबाए रहती हैं। वह अपनी आँखों को ऊपर की ओर फेरता है, मानों भ्रू-मध्य-स्थान को देखने की चेष्टा कर रहा हो। अभ्यास करते समय शरीर पूर्ण-रूप से स्थिर और बिलकुल अकड़ा हुआ रहना चाहिए। तब शिक्षार्थी को प्रणायाम करना, और साथ-साथ ईश्वर-चिंतन करते जाना चाहिए। इस अभ्यास से वह पाप से मुक्त हो जायगा। इस प्रकार विशेष-रूप से ऊपर की ओर अचल दृष्टि से देखने से एक प्रकार की आत्म-मूर्च्छना उत्पन्न हो जाती है। इससे नेत्रों पर भारी आयास पड़ता और बहुत शीघ्रता से थकावट पैदा हो जाती है। हिप्नॉटिज़्म करनेवालों के लिये यह विधि बहुत अच्छी है।

दूसरा पद्मासन है। इस का नियम-पूर्वक अभ्यास करने से शिक्षार्थी अपना कोई भी रोग दूर कर सकता है। टाँगों को वार-पार करके पलथी मारी जाती है; बायाँ पैर दाईं जाँघ पर, और दायाँ पैर बाईं जाँघ पर रक्खा जाता है। दोनों हाथों को भी वार-पार करके जाँघों पर रक्खा जाता है—दायाँ हाथ बाईं जाँघ पर, और बायाँ दाईं पर।

इस आसन में योगी नाक के सिरे को अचल दृष्टि से देखता है। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि इससे भी आँखों पर ख़ासा ज़ोर पड़ता है, और बड़ी सुगमता से गाढ़ी नींद आने लगती है। तब जीभ को मुँह की छत और दाँतों के साथ लगाकर दबाओ। सिर को थोड़ा-सा पीछे फेंककर और छाती को खूब बाहर तानकर धीरे-धीरे साँस को भीतर खींचो, और जहाँ तक फेफड़े सुख-पूर्वक भरे जा सकें, भर लो; अंत को धीरे-धीरे और पूर्णतः सम-रूप से साँस की धारा बाहर निकाल दो।

इस उपाय से योगी अपने शरीर की एकाग्रता प्राप्त कर सकता और अपने सब रोगों का नाश कर सकता है। पूर्ण स्वास्थ्य और नित्य जीवन की प्राप्ति हठ-योग का एक प्रधान आदर्श है।

उग्रासन इस प्रकार है—भूमि पर बैठकर शिक्षार्थी अपने सामने की ओर टाँगें सीधी पसार लेता है। तब

वह अपने सिर को हाथों में लेकर दोनों घुटनों के बीच रख देता है, और प्राणायाम करता रहता है।

कहते हैं, इससे योगी को सभी आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। इस कारण इसका अभ्यास सावधानता-पूर्वक करना चाहिए। यह कोई सुगम बात नहीं।

स्वस्तिकासन पैरों के तलवों को जाँघों के नीचे रखकर लगाया जाता है। इसमें शरीर का सीधा और अकड़ा हुआ रखना पड़ता है। इस इतनी बात को छोड़कर शेष सब प्रकार से योगी सुख-पूर्वक बैठता है।

व्यायाम न करनेवाले साधारण प्रौढ़ व्यक्ति को प्रथम वार इस आसन का अभ्यास करने से बहुत थोड़ा सुख मिलेगा। इस आसन की सिद्धि हो जाने पर फिर इस को बनाए रखना भी बहुत ही कठिन है। इसका अभ्यास करनेवाले में कोई रोग नहीं रहता। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि आध्यात्मिक शक्तियों के पहले सदा पूर्ण स्वास्थ्य ढूँढ़ा जाता है, और यह बात लोक-विदित है कि कि ऐसे लोग सदा पूरी तरह नीरोग होते हैं।

चारों आसनों में प्राणायाम परम आवश्यक है; परंतु जो शिक्षार्थी सफल होना चाहता है, उसे थकावट की विघ्न-बाधाओं, और सब प्रकार के निरुत्साह और निराशा की कुछ भी परवा न कर बड़ी धुन के साथ इसका

अभ्यास जारी रखना चाहिए। उसका ध्यान सदा अपने प्रयोजन पर ही रहना चाहिए।

इसके आगे मुद्राओं का अभ्यास है। मुद्रा के आगे मंत्र हैं। मंत्रों के लिये शिक्षार्थी को किसी गुरु के पास जाना आवश्यक है; क्योंकि उच्चारण की रीति इत्यादि काग़ज़ पर लिखकर नहीं बताई जा सकती। मुँह से बोलकर भी केवल वही व्यक्ति सिखा सकता है, जिसमें सिखा देने की योग्यता हो।

मंत्र के शब्द खुद कोई चीज़ नहीं। उनके उच्चारण की रीति ही सब कुछ है। कई अवस्थाओं में किसी विशेष शब्द के बोलने से शरीर के भीतर एक विशेष प्रकार की अतीव वेगवती थरथराहट पैदा हो जाती है।

मैं इस अवस्था में हूँ कि यह कह सकूँ कि जो कुछ ऊपर साफ़-साफ़ लिखा गया है, वह सर्वथा सत्य है; क्योंकि मैंने स्वयं इसकी परीक्षा की है।

मुद्राओं का अभ्यास करने का उद्योग करनेवाले व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि वह अपने शरीर को किसी क़दर मरोड़ और ऐंठ सकता हो। यद्यपि मैं यहाँ कुछ-एक मुद्राओं का वर्णन करने लगी हूँ, तथापि मैं किसी भी व्यक्ति को गुरु के बिना इनका अभ्यास करने का परामर्श नहीं देती। इनका संबंध हठ-योग से है, और स्वास्थ्य पर इन का प्रभाव सबसे अधिक तात्कालिक होता है। कहते हैं,

इनके द्वारा बुढ़ापे और मृत्यु, दोना पर समान-रूप से विजय प्राप्त होती है, रोग नष्ट हो जाते हैं, और आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

महा-मुद्रा के अभ्यास की विधि यह है—शिक्षार्थी ज़मीन पर बैठ जाय, और एक पैर सीधा पसारकर इसे दोनों हाथों से मज़बूती से पकड़ ले। उसे घुटनों के बल झुक जाना और दूसरी टाँग को नीचे दुहराकर एड़ी से गुदा को दबाना चाहिए। इस अवस्था में पहले-पहल बड़ी पीड़ा होती है। उसे इस सारे समय में प्राणायाम का अभ्यास करते रहना और अपने विचारों को किसी आध्यात्मिक विषय पर एकाग्र रखना चाहिए।

इस अभ्यास से प्रत्येक रोग शांत हो जाता है। कहते हैं, यह बुढ़ापे, बल्कि मृत्यु को भी रोक देती है।

इसमें एक गुण यह भी है कि इससे पशु-वृत्ति और विषय-वासनाओं को दबाने में योगी को सहायता मिलती है। महामुद्रा उसे अपनी अभिलाषाओं की प्राप्ति में समर्थ बना देती है।

इसका अभ्यास एकांत में और पारी-पारी से, पहले एक अंग से, फिर दूसरे से, करना चाहिए। यह सब से अधिक शक्ति-शालिनी मानी जाती है। बहुत धीरे-धीरे उन्नति करनेवाले अभ्यासी को भी इससे सफलता हो जाती है।

इससे आगे की मुद्रा इस योग्य नहीं कि वह कम-से-कम अँगरेज़ी में मुद्रित की जाय। इसलिये मैं उसे छोड़ देती हूं, नहीं तो छापेख़ाने का क़ानून मुझे अपने चंगुल में पकड़ने का यत्न करेगा।

खेचरी-मुद्रा पाश्चात्य शिक्षार्थी के लिये ऐसी असंभव नहीं। यद्यपि जितनी सुगम यह ऊपर से मालूम देती है, वास्तव में उतनी सुगम नहीं, तथापि किंचित् धैर्य के साथ शिक्षार्थी सफलता-पूर्वक इसका अभ्यास कर सकता है।

ब्रह्मासन लगाकर बैठो, और दोनों भौंहों के बीच के स्थान पर निश्चल दृष्टि स्थिर करो। अब जीभ को उलटी लपेटकर कपाल-कुहर में—कण्ठमूल में जो छोटा-सा छिद्र है, उसमें—प्रविष्ट करो। इस बीच में सामान्य रूप से प्राणायाम करते रहो। इसका करना सभी अभ्यासों में आवश्यक है।

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि जो सिद्ध कुछ दिनों तक अपने आपको जीते जी भूमि के नीचे दबाना स्वीकार करते हैं, वे जीभ को मुँह में सदा इसी रीति से उलटी लपेट लेते हैं।

शास्त्रों में योगी के लिये आज्ञा है कि वह जीभ को इस स्थिति में रखकर अमृत-रस का पान करे—अर्थात् उस श्वास को पीवे, जो एक मार्ग से नीचे उतरकर मेरुदंड की दूसरी ओर से ऊपर चढ़ती है, याने "चंद्रकमल" (जो

मेरुदंड की चोटी पर है) से "सूर्य-मंडल" (जो मूलाधार चक्र में है) में जाती है।

वे विश्वास दिलाते हैं कि इस मुद्रा का अभ्यासी अपनी प्रगति के पथ में पड़नेवाली सभी विघ्न-बाधाओं को मारकर भगा देगा, चाहे उस समय वह थोड़ा-बहुत पाप, बल्कि अपराध से भी मलिन क्यों न हो रहा हो। इस विश्वास में कुछ संदेह होता है, और मनुष्य आश्चर्य से पूछता है कि क्या यह सरल-सा अभ्यास सचमुच एक पापी को पवित्र कर सकता है, अथवा यह इसके उपयोग से प्राप्त होनेवाली अमित शक्ति की बड़ाई दिखाने के लिये केवल एक उपमा है।

कहते हैं, जालंधर मुद्रा (बंध?) से अभ्यासी को आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, और इसी उद्देश्य से उसे इसका प्रति-दिन अभ्यास करना चाहिए।

अभ्यासी गले के पुट्ठों को सिकोड़कर ठोड़ी को छाती पर नीचे को ओर दबाता है। वह जितनी देर तक संभव हो, पुट्ठों को इस प्रकार सिकोड़े रखता और निरंतर प्राणायाम करता रहता है।

विपरीत-करण मुद्रा में अभ्यासी सिर के बल खड़ा होकर टाँगों को चक्राकार घुमाता है।

साधारण मनुष्य को तो निश्चय ही यह एक पागल-पन-सा जान पड़ेगा। फिर जब मैं यह कहूँगी कि इसका

अभ्यास तीन घंटे तक जारी रखना चाहिए, तो मेरा विश्वास है कि बहुत से पाठक इसे बिलकुल छोड़ देना ही पसंद करेंगे। कहते हैं, जो योगी इसका प्रति-दिन अभ्यास करता है, वह मृत्यु से छूट जाता है, और उसे सब गुह्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। मैं समझती हूँ, वह इनका अधिकारी है।

साथ ही यह बता देना भी उचित है कि शिक्षार्थी इनमें से किसी एक मुद्रा के निरंतर अभ्यास से योगी बन सकता है इसलिये उसे चाहिए कि जो मुद्राएँ योरपीय लोगों के शरीर की बनावट और रहन-सहन की रीति के अनुकूल नहीं, उन्हें छोड़कर वे अपने लिये एक ऐसी मुद्रा चुन लें, जिसे वे अधिक उत्तम रीति से कर सकें।

पाँचवाँ प्रकरण

योग चार प्रकार का है—राज-योग, लय-योग, हठ-योग, और मंत्र-योग। इसी प्रकार अभ्यासियोंके भी चार दर्जे हैं—एक वे, जो सफलता के लिये साधारण यत्न करते हैं; दूसरे वे, जो केवल मध्यम रीति से अभिलाषा करते हैं; तीसरे वे, जो उसके लिये व्यग्र हैं, और चौथे वे, जो प्रचंड रूप से व्यग्र हैं।

स्वभावतः ही, शिक्षार्थी की तत्परता जितनी अधिक

प्रचंड होगी, उतनी ही शीघ्रता से उसे सिद्धि प्राप्त होगी, और यह उतनी ही अधिक उच्च कोटि की होगी।

राज-योग विकास का उच्चतम रूप समझा जाता है; क्योंकि इसका लक्ष्य प्रत्यक्ष रूप से आध्यात्मिक है। यह चेले को उसकी आभ्यांतरिक प्रकृति का जीतना और उसका स्वामी बनना सिखाता है। यह सब वस्तुओं में परमात्मा के जानने का यत्न करता है।

हठ-योग विकास का कुछ अधिक भौतिक रूप है। यह अभ्यासी को पुष्ट स्वास्थ्य की प्राप्ति करने और बुढ़ापे को दूर रखने में सहायता देता है। मंत्र-योग का संबंध पवित्र मंत्रों के साथ है, जिनके निरंतर उच्चारण से सफलता और सिद्धि प्राप्त होती हैं।

मंत्र-योग केवल योगियों ही की विशेषता नहीं; क्योंकि सूफ़ी भी इसी प्रकार के मंत्र का प्रयोग करते और उसी शब्द को एक ही स्वर से कई सहस्र बार पढ़ते हैं। कभी-कभी इस अभ्यास में अतीव चमकीले स्वप्न दिखाई देने लगते हैं।

जिन वस्तुओं की मनुष्य आकांक्षा कर सकता है, जैसे शक्ति, सफलता, पवित्रता, धन, प्रेम इत्यादि, उन सब के लिये मंत्र हैं; परंतु केवल योगी ही उनके शब्द और ठीक ठीक उच्चारण बता सकता है।

फिर भी शिक्षार्थी अपनी छाया से मंत्र पढ़ने की रीति

का अभ्यास सुगमता-पूर्वक कर सकता है। यह छाया उसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देगी। इस शिक्षा के अनुसार जो मनुष्य आकाश में अपना प्रतिबिंब देख सकता है, उसे मालूम हो जाता है कि उसका काम सफल होगा या नहीं।

थोड़ी देर के लिये इस में संदेह जान पड़ेगा कि ऐसी बात संभव कैसे हो सकती है, परंतु यह उतनी कठिन नहीं, जितनी समझी जाती है।

सूर्य उदय हो रहा हो, तब बाहर जाओ, अथवा पूर्णिमा के चंद्रमा की चाँदनी का उपयोग करो। इस प्रकार खड़े हो कि तुम्हारे शरीर की छाया भूमि पर पड़े। तब थोड़ी देर तक उस छाया पर अपनी आँखों को दृढ़ता-पूर्वक स्थिर करो, और फिर ऊपर आकाश की ओर देखो। अब यदि आकाश में वह छाया दिखाई दे, तो जो प्रश्न पूछा गया है उसके लिये यह अनुकूल उत्तर है—जो भी काम कर रहे हो, उस में सफलता की आशा का सूचक है।

यह सब गप नहीं। मैंने स्वयं इस की परीक्षा कर देखी है, और मुझे इसमें ख़ासी सफलता हुई है।

यदि छाया दिखाई न दे, तो समझो कि उत्तर 'नहीं' है, और कार्य-सिद्धि न होगी। परंतु यदि छाया दिखाई दे, तो इसका उलटा समझो, अर्थात् मनोरथ सिद्ध हो जायगा।

अब हम भिन्न-भिन्न प्रकार की धारणाओं को लेते हैं। विशेषतः राज-योग में सिद्धि और अध्ययन के लिये यह बड़े ही महत्व का विषय है।

योरपियन लोगों को यथार्थ धारणा का प्रायः बिलकुल ज्ञान नहीं; क्योंकि सामान्य योरपियन में इसकी सामर्थ्य ही नहीं। हमें बहुत ही थोड़े ऐसे मनुष्य मिलते हैं, जो शेष सब विषयों को छोड़कर केवल एक ही विषय पर अपनी सब शक्तियों को एकाग्र कर सकते हों।

हिंदू लोग विचार को चित्त कहते हैं। इस चित्त में विचार-मूर्तियों द्वारा उत्पन्न की हुई लहरों— चित्त-वृत्तियों— को शांत करना होता है।

साधारण मनुष्य के चित्त में ये लहरें उमड़े हुए सागर की लहरों के सदृश होती हैं। जब तक ये दर्पण के सदृश चौरस न हो जायँ, यथार्थ धारणा की अवस्था नहीं प्राप्त हो सकती।

विचार की लहरें सब रोक दी जानी चाहिए। तभी चित्त एक-सा और शांत हो सकता है। जब तक यह बात नहीं होती, योगी अपनी आत्मा को नहीं देख सकता। योग कम-से-कम राज-योग—का लक्ष्य सब प्रकार की मलिनता से मुक्त हुई आत्मा का दर्शन करना और उस के प्रकाश में ब्रह्म में लीन हो जाना है।

जब तक मानव-प्रकृति की नीच-वृत्तियाँ जीत नहीं ली जातीं, और सहज पशु-बुद्धि दबा नहीं दी जाती,

तब तक आत्मा के निर्मल प्रकाश को देखना असंभव है।

उस समय तक प्रकाश धुँधला और काला पड़ जाता है, और कभी-कभी अदृश्य भी हो जाता है। परंतु यह आत्मा ही यथार्थ मनुष्य है। यह चित्त में उठनेवाली लहरों में ढका और बहुधा दबा रहता है। जब तक सारी चित्त-वृत्तियाँ शांत न हो जायँ, तब तक आत्मा का वास्तविक स्वरूप प्रकट नहीं हो सकता।

शिक्षार्थी को पद्मासन लगाकर बैठना चाहिए। इस आसन का विस्तार-पूर्वक वर्णन पहले हो चुका है। फिर वह जीभ को दाँतों की जड़ के साथ दबाकर तालू के कपाल-कुहर में डाले।

अब अपने मन में इस प्रकार का चित्र खींचिए कि आपके माथे के मध्य में एक तीसरा नेत्र है। इस कल्पित नेत्र का सदा ध्यान करते रहने से एक सुंदर और चमकीला प्रकाश दिखाई देने लगेगा। जो अभ्यासी इस प्रकाश पर अपने विचार को निरंतर एकाग्र करता है, वह पाप से मुक्त हो जाता है।

यदि अभ्यासी इस प्रकाश का सदैव चिंतन करता है, यहाँ तक कि यह कार्य उस के दैनिक जीवन का एक भाग बन जाता है, और वह इसमें प्रायः चलता-फिरता जान पड़ता है, तो वह सिद्धों को देखने में समर्थ हो जाता है। ये सिद्ध वे अर्द्ध-दिव्य सत्ताएँ हैं, जिन्होंने योग के अध्ययन

से अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं। अभ्यासी इन-से बात-चीत कर सकेगा, और शिक्षा ले सकेगा।

जो शिक्षार्थी शून्य का निरंतर चिंतन करता है, अर्थात् जो अपने मन को न्यूनाधिक शून्य कर लेता है, वह वायु में उड़ने, चलने, और आकाश में लीन हो जाने की शक्ति प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। यही बात नाक के अग्र भाग पर दृष्टि को स्थिर करने और विविध रीतियों से, मन को विचार से शून्य करने के संबंध में भी है।

परंतु नियम-रूप से यह देखा जायगा कि शरीर की किसी विशेष इंद्रिय पर चित्त को एकाग्र करने से उस इंद्रिय की सूक्ष्मता और शक्तियाँ बहुत अधिक तो नहीं बढ़ जातीं; वे इतनी प्रचंड और बलवती तो नहीं हो जातीं कि देखकर आश्चर्य हो।

जो हो, किसी विशेष इंद्रिय पर चित्त को एकाग्र करने का प्रयोजन वास्तव में मन को साधना है, और किसी बाह्य पदार्थ की अपेक्षा अपने शरीर के किसी भाग पर ध्यान को स्थिर करना बहुत सुगम है। इससे उद्योग-शीलता की शिक्षा मिलती है, जिसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि अच्छा सधा हुआ चित्त शेष अनेक विषयों को छोड़कर केवल किसी एक ही विषय पर चाहे जब स्थिर किया जा सकता है, और उससे चित्त की वृत्तियाँ शांत होकर सिद्धि की अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। वास्तव

में अभ्यासी मनुष्य जिस वस्तु का ध्यान करता है, उसका एक भाग बन जाता है। इसलिये वह सब वस्तुओं से वह शिक्षा प्राप्त कर लेता है, जो वे दे सकती हैं; क्योंकि वह प्रकृति के पदार्थों को नाँघकर अनायास ही दिव्य और अदृष्ट लोक में चला जाता है।

ज्ञान उसे इसलिये मिल जाता है कि वह अपने-आप-को किसी भी वस्तु से मिला सकता, उसके इतिहास में विलीन हो सकता, उसके भीतर अनुभव कर सकता, और उसमें इतना लीन हो सकता है कि उसे समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

योगी स्वयं आत्मा को देखना — उसमें लीन हो जाना—चाहता है। उसे इस बात का अनुभव अवश्य करना होता है कि आत्मा ही यथार्थ मनुष्य है, शरीर उसके लिये एक वाहन-मात्र है।

ज्यों ही शिक्षार्थी इस सचाई को ग्रहण कर लेता है, वह सिद्धि के बहुत समीप पहुँच जाता है; क्योंकि सत्य-ज्ञान से शीघ्र ही सत्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

परंतु यह बात कैसी विचित्र है कि शरीर के किसी-एक अंग पर विचार को एकाग्र करने से उसी विशेष स्थान की ओर संज्ञा दौड़ने लगती है, यहाँ तक कि यह भासित होने लगता है कि वही—सारे शरीर में केवल वही—व्याप्त है, जो किसी बात का अनुभव कर सकता है।

मैं समझती हूँ, बहुधा यही कारण होता है कि कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा पीड़ा के अधिक प्रचंड क्लेशका अनुभव करते हैं। ये अपने मन को रोग या पीड़ा के ही केंद्र पर स्थिर कर देते हैं, जिस से उनके शरीर की सभी इंद्रियाँ उनके दुःख की ओर खिच आती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पीड़ा तो सैकड़ों गुनी अधिक प्रचंड मालूम होती है, किंतु रोगी को उसके कारण का बिलकुल ज्ञान ही नहीं होता।

वास्तव में यह बात नहीं कि कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा दुःख का अनुभव कम करते हैं; परंतु बात केवल इतनी है कि उन लोगों में, पीड़ा को अपने ऊपर छोड़कर, मन को दूसरी ओर लगा देने की क्षमता होती है।

छठा प्रकरण

पवित्र शब्द 'ॐ' के उच्चारण ने पूर्वी विषयों के अध्ययन करनेवाले सभी योरपियन लोगों के ध्यान को आकर्षित किया है।

इस शब्द के उच्चारण से उत्पन्न होनेवाली थरथराहट ऐसी प्रबल होती है कि यदि वह कुछ काल तक स्थिर रहे, तो बड़े-से-बड़े भवन को गिरा दे।

जब तक मनुष्य ने इस अभ्यास की परीक्षा न कर

देखी हो, तब तक उसके लिये इसपर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है। परंतु एक बार परीक्षा कर लेने पर वह सुगमता से समझ सकता है कि उपर्युक्त कथन पूर्ण रूप से ठीक और सच्चा किस प्रकार हो सकता है। यह बात अवश्य है कि मैंने स्वयं 'भवन गिराने' की इस अद्भुत रीति की परीक्षा नहीं की; परंतु थरथराहट की शक्ति की जाँच अवश्य की है, और मैं सर्वथा विश्वास कर सकती हूँ कि उपर्युक्त कथन बिलकुल सत्य होगा।

जिस प्रकार जेहोवा यहूदियों का, और अल्लाह मुसलमानों का पवित्र शब्द है, ठीक वैसे ही यह शब्द योग का है। इस शब्द का निरंतर चिंतन और उच्च स्वर से जप करने से, अथवा प्राणायाम करते हुए इसे मानसिक रूप से ढक लेने से अभ्यास करनेवाला शक्तिशाली और शुद्ध हो जाता है।

'ॐ' परमात्मा के सभी रूपों को प्रकट करता है। हमारे पास परमात्मा के लिये जितने भी नाम हैं, उन सबसे यह अधिक पूर्ण और व्यापक है, और स्वभावतः अतिशय पवित्र समझा जाता है। जिस प्रकार इसका विन्यास किया जाता है, उसी प्रकार यदि इसका उच्चारण भी किया जाय, तो शिक्षार्थी पर एक विशेष परिणाम होता है; परंतु ठीक रीति से उच्चारण करने से यह शरीर में नवीन कंपन और अवस्थाएँ उत्पन्न कर,

देह की सोई हुई शक्तियों को जगाकर उसकी भौतिक काया के प्रत्येक परमाणु को उठाता और बदल डालता है।

इन शक्तियों को केवल तभी जगाया जा सकता है, जब शरीर पूर्वोल्लिखित अभ्यासों द्वारा पहले ही शुद्ध किया जा चुका हो।

परंतु अभ्यासी के लिये इस पवित्र शब्द के उपयोग की सर्वोत्तम विधि यह है कि वह अपने लिये कोई अनुकूल आसन ग्रहण करे। जो आसन उसे अधिक सुगमता से आ जाय, वही सबसे अच्छा है। अब वह एक नथने को बंद कर दूसरे नथने से धीरे-धीरे और सम-रूप से साँस ले; साथ ही सात बार ॐ का जप करे। वह इस शब्द के प्रत्येक उच्चारण पर एक से चार मिनट तक लगावे, और साँस को इस प्रकार व्यवस्थित करने का यत्न करे कि वह यथा-संभव बहुत थोड़े श्वासोच्छ्वास ले।

लंबे अभ्यास से श्वास-क्रम अवश्य ही घटता जायगा; यहाँ तक कि वह कुछ मिनट बिना साँस लिए रह सकेगा।

इस अवधि को शनैः-शनैः बढ़ाओ, और पवित्र शब्द के जप को बढ़ाकर पहले दो बार सात तक, फिर इक्कीस, फिर अट्ठाईस, और इसी प्रकार यथा-सामर्थ्य आगे तक बढ़ाते चलो। परंतु प्रत्येक बार सात की संख्या को वृद्धि का अनुपात बनाओ।

ॐ की उच्चारण-विधि

पवित्र शब्द 'ॐ' का शुद्ध रीति से उच्चारण करने के लिये शिक्षार्थी को इस प्रकार बोलना चाहिए कि अंतिम 'म्' मधुमक्षिका की भिनभिनाहट के सदृश उस के कंठ में थरथराने लगे, और वह स्वर को इतना लंबा करे, जितना यथासंभव एक साँस में हो सकता है।

इसमें अभ्यस्त होने के लिये थोड़ा-सा समय लगता है; परंतु जब एक बार इस हलकी-सी कठिनाई को जीत ले, तो इसका असर तुरंत और जादू का-सा होता है। किंतु मंत्र की असाधारण शक्ति के विचार से, शिक्षार्थियों को इसका अतिशय अभ्यास न करना चाहिए।

यह एक सर्व-विदित सत्य है कि सारंगी में एक ही स्वर निरंतर बजाते रहने से पत्थर की दीवारें गिराई जा सकती हैं; और यदि एक स्थिर और यथाक्रम झंकार काफ़ी देर तक जारी रक्खी जाय, तो इससे कोई भी भवन टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेगा।

इसी प्रकार इस मंत्र के अभ्यास को जारी रखने से हम किसी भी परमाणुमयी वस्तु को तोड़-फोड़ सकते हैं।

परंतु इसका सबसे तीव्र परिणाम मुख्यतः स्वयं अभ्यासी पर ही होता है।

यह झंकार शरीर के प्रत्येक परमाणु को जगा देती

है, सारा शरीर झंकार देने लगता है यहाँ तक कि शरीर के केंद्र बदलकर नए बन जाते और तांत्रिक दृष्टि से शरीर की शुद्धि हो जाती है।

यह जगाई हुई थरथराहट इतनी प्रबल होती है कि अधिक सूक्ष्म तथा पवित्र प्रभावों और उच्च कोटि के कंपनों को आकर्षित कर सब पापमय प्रभावों को भगा देती है। यह शिक्षार्थी की सभी गुह्य शक्तियों को जगाकर उसे एक नवीन और अनंतगुनी अधिक शक्तिशाली सत्ता बना देती है; क्योंकि इस मंत्र के अभ्यास का एक परिणाम यह होता है कि सब वस्तुओं से भलाई ले लेने और सब वस्तुओं में भलाई देखने की शक्ति प्राप्त हो ही जाती है।

पवित्र प्रणव के जप से क्या सिद्धि होती है, यह पहले ही भली भाँति विदित हो चुका है। परंतु अभ्यासी इसके उच्चारण की विधि जानना चाहते रहे होंगे। इसलिये वह भी बता दी गई।

जिसका मन अपवित्र है, या जो पाप-कर्म करता है, उसके लिये यह बड़ी हानिकारक है। पवित्र 'ओंकार' के अभ्यास और जप करने का उद्योग करने के पहले इस बात का निश्चय कर लो कि तुम्हारा हृदय शुद्ध है, तुम्हारे कर्म न्याय-संगत हैं, और तुम्हारी कामनाएँ पवित्र हैं।

यदि ऐसा न करोगे, तो मैं चेतावनी देती हूँ, तुम्हें

बड़ी हानि पहुँचेगी। यथार्थभाव से ही इसका उपयोग करने से यह मंत्र कल्याण एवं सफलता दिलाने में बड़ा ही शक्तिशाली है।

जो भी व्यक्ति गुरु से इस के अभ्यास की शिक्षा प्राप्त करेगा, वह निश्चय ही योग में उन्नति कर महान् और शक्तिशाली बन जायगा। उसे दिव्य और अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हो जायँगी।

पवित्र शब्द 'ओम्' के तीन अक्षर सृष्टि (अ), स्थिति (उ) और संहार तथा पुनर्जन्म (म्) पूर्वी परिभाषा में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को बतलाते हैं।

इसी प्रकार तीनों अक्षर उन महान् अदृष्ट शक्तियों से लेकर, जिनपर केवल बड़े-बड़े वैज्ञानिक ही कल्पना कर सकते हैं, उन साधारण विषयों-तक, जिनको अनजान-से-अनजान व्यक्ति भी जानता है, सारी प्रकृति में पाए जाने वाले त्रिगुणित तत्त्व को दिखलाते हैं।

'ओम्' शब्द अपने संपूर्ण अर्थ में परमात्मा को प्रकट करने के लिये एक चिह्न है। 'ओम्' तीन तत्त्वों—विषयाश्रित, आध्यात्मिक और सनातन—को भी बतलाता है। विषयाश्रित द्रव्य या प्रकृति को 'अ' और उस के कंपन प्रकट करते हैं। आध्यात्मिक द्रव्य या अंतःकरण, जो प्रकृति और सनातन परमेश्वर के बीच जोड़नेवाली एक कड़ी है,

मध्यवर्ती अक्षर 'उ' के कंपनों द्वारा प्रकट किया गया है। सनातन-द्रव्य या परमात्मा अंतिम 'म्' द्वारा प्रकट किया गया है।

जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूँ, यह शब्द अनंत में फैले हुए जीवन के तीन रूपों को प्रकट करता है।

इस प्रकार एक तो प्राकृतिक या विषयाश्रित जगत् है, जिसे हम देख सकते हैं; दूसरा आध्यात्मिक जगत् या वह लोक है, जिसका अनुभव हमारी इंद्रियाँ तब तक नहीं कर सकतीं, जब तक वे सूक्ष्मतर वस्तुओं के संस्कारों को ग्रहण करने में समर्थ न हो जायँ; और तीसरा सनातन-जगत् है, जो सबका जीवन है।

इस शब्द का प्रयोग जिस प्रकार शिक्षार्थी करता है वह पूर्ण एकाग्रता में चेतना, आत्मा और विचार की इन तीन अवस्थाओं को प्रकट करता है। विषयाश्रित और भौतिक से उठकर वह आध्यात्मिक के द्वारा सनातन आत्मा तक पहुँचता है, और ज्यों-ज्यों इस शब्द के कंपन का वेग बढ़ता जाता है, अभ्यासी की आत्मा उसकी सत्ता के दिव्य केंद्र में पहुँचता जाता है।

कंपन की शक्ति मनुष्य की भौतिक प्रकृति को चीर डालता है, और उसके मानसिक या आध्यात्मिक अंतःकरण से गुज़रकर उसके हृदय के भीतर सनातन तत्त्व के पास पहुँच जाती और उसे जगा देती है।

सारी प्रार्थना के शब्द ये हैं— "ओम् मनि पद्मे ओम्"। ओम् तो, जैसा मैं पहले बता चुकी हूँ, परम-देव का चिह्न है, मनि ज्ञान एवँ मुनि को प्रकट करता है और पद्म सोने का कमल है।

जो शिक्षार्थी सच्चे हृदय से इस पवित्र विद्या में सफलता प्राप्त करने का अभिलाषी है, उसे निस्संदेह अपने-आप गुरु मिल जायगा, और वह आवश्यक प्रकाश प्राप्त कर लेगा।

आध्यात्मिक विषयों में सदैव उन्हीं को ज्ञान दिया जाता है, जो धुन से उसकी तलाश करते हैं।

पुस्तकें, गुरु, ज्ञान—सब उन्हें उचित समय पर अपने-आप मिल जाते हैं। जिन चीज़ों के लिये वे तैयार होते हैं, उनमें से किसीसे भी उन्हें कभी वंचित नहीं होना पड़ता।

मैं यह उस अवस्था में कह रही हूँ, जब शिक्षार्थी को इस पुस्तक में बताई हुई मेरी शिक्षाओं पर पूरी तरह चलने के लिये साधन ढूँढ़ने में निराशा हो।

परंतु मैं अपने अनुभव से जानती हूँ कि जिस बात का आपको प्रयोजन होगा, वह, ज्यों ही आप उसे ग्रहण करने के लिये तैयार होंगे, तत्काल आपके पास आ जायगी।

सातवाँ प्रकरण

अब हम शरीर के कमलों पर विचार करते हैं। ये कमल शरीर के आध्यात्मिक केंद्र हैं। कहते हैं, इन में जीवन-शक्ति, बल, और दिव्य शक्तियाँ संचित हैं।

ये विविध प्रकार के चक्रों (Plexuses) और स्नायु-केंद्रों (Ganglionic centres) अर्थात् नाड़ी-समूहों के अनुरूप हैं। इनमें मनुष्य-देह के सब दूसरे भागों की अपेक्षा जीवन-शक्ति और अनुभव-शक्ति अधिक प्रबल-रूप से एकत्र है।

पूर्वी परिभाषा में इन केंद्रों को 'कमल' कहते हैं। अवश्य ही 'कमल'-शब्द 'नाड़ी-चक्र' (Plexus) की अपेक्षा अधिक सुंदर है।

योग में चौदह केंद्र माने गए हैं। योग के अध्ययन और सिद्धि की प्राप्ति में इनसे विशेष काम निकलता है। इनमें से नव व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये विशेष उपयोगी हैं।

जीवन-शक्ति प्रत्येक कमल से प्रवाहित और उसमें केंद्रित हो रही है; परंतु कुछ कमल दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रबल हैं।

एक बड़ा भारी केंद्र वह है, जहाँ कुंडलिनी-शक्ति निवास करती है।

कुंडलिनी का शाब्दिक अर्थ है 'कुंडली मारे हुए'। यह

प्रत्येक वस्तु में पाई जानेवाली परम जीवन की गुप्त या सोई हुई शक्ति है।

यह सुषुम्णा (मेरु-दंड में से गुज़रनेवाली मध्यवर्ती नली) के मूल में पाई जाती है, और मूलाधार-चक्र में केंद्रीभूत है।

कुंडलिनी विष्णु (प्रज्ञा) की शक्ति है, और यह तीन गुणों—प्रकाश, अंधकार और चेष्टा—अथवा सत्व, तमस्, और रजस् की जननी कही जाती है।

यहाँ यह पूर्वोक्त तीन नलियों या मार्गों इडा, पिंगला और सुषुम्णा—'अग्नि', 'सूर्य', और 'चंद्रमा'—का आलिंगन करती है, और जहाँ ये तीनों विलीन होती हैं, वहीं ये मिलकर 'बीज' नाम की एक वस्तु उत्पन्न करती है। यह बीज अतीव शक्तिशाली और चेष्टावान् है। एक सूक्ष्म शक्ति के रूप में समस्त शरीर में फैला हुआ यह गति, जीवन और अनुभव, तथा विशेष रूप से ओज प्रदान करता है।

उपर्युक्त समन्वय 'मूलाधार-कमल' कहलाता है; अर्थात् यह वह मूल है, जिसके आधार पर शरीर का सारा जीवन ठहरा हुआ है।

इस कमल को वेष्टित करनेवाली शक्ति 'प्रेम का बीज' कहलाती है। इस सारे समवाय को मूलाधार-कमल कहते

हैं। इसके चार दल हैं, जिनके साथ वे चार अक्षर व, श, ष और र (स ?) लगाते हैं।

जो योगी इस केंद्र का ध्यान करता है, वह रोग से मुक्त हो जाता है।

उसे भूत और भविष्य का सारा ज्ञान हो जाता है। वह सब विद्याओं में निपुण हो जाता और जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसे मिल जाती है। वह सब आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है।

प्रति दिन अभ्यास करने से उसे कोई ६ मास में, सफल होने की आशा हो सकती है। परंतु इसके लिये निरंतर और सुदीर्घ ध्यान परमावश्यक है; क्योंकि उसे मध्यवर्ती मार्ग (सुषुम्णा) को खोलना पड़ता है। अभ्यासी का यह प्रधान लक्ष्य होता है।

दूसरा कमल 'स्वाधिष्ठान कमल' कहलाता है। इसके ६ दल होते हैं।

जो कोई इस केंद्र का ध्यान करता है, वह प्रायः "प्रियतम" हो जाता है। मृत्यु और रोग उस पर आक्रमण नहीं कर सकते।

तीसरा पद्म नाभि के समीप अवस्थित है। इसके १० दल होते हैं। कहते हैं, यह सुख तथा अन्य सब शुभ पदार्थ देता है।

इस केंद्र का नाम 'मणिपूर-चक्र' है। जो योगी

इस पवित्र केंद्र का ध्यान करता है, वह पूर्णानंद को प्राप्त होता और रोग तथा शोक को नष्ट कर सकता है।

उसमें दूसरे शरीर में प्रवेश करने की शक्ति आ जाती है। वह धातुओं का रूपांतर और रोगियों को चंगा कर सकता है। उसे दूर देश की वस्तुओं के देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

इस कमल का रंग सुनहला है।

चौथे कमल को 'अनाहत' कहते हैं। इसका स्थान हृदय में है। यह लहू के समान लाल रंग का है। इसमें १२ दल रहते हैं।

इस कमल के भीतर 'वाण-लिंग' नाम की अग्नि-शिखा है, जिसके ध्यान से योगी दृश्य और अदृश्य जगत् के पदार्थों को सूक्ष्म-दृष्टि से देख सकता है।

कहते हैं, उसे भूत, भविष्य और वर्तमान का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। उसे अनुपस्थित वस्तुओं को देखने, दूर-देशस्थ शब्दों को सुनने, सिद्धों को देखने, वायु पर चलने, और इच्छा-मात्र से जगत् के किसी भी भाग में पहुँच जाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

यह बड़े ही महत्त्व का केंद्र है।

पाँचवाँ कमल कंठ में अवस्थित है, और 'विशुद्ध चक्र' कहलाता है।

इसके १७ दल हैं, और इसका रंग सुनहला है। योगी इसे वर्ण-माला के स्वरों का स्थान देते हैं।

जो शिक्षार्थी इस केंद्र का मन में निरंतर ध्यान करता है, उसमें वेदों को समझने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

क्रुद्ध होकर मन को इस कमल पर स्थिर करके वह लोक-लोकांतरों को कंपायमान कर सकता है।

इस चक्र का ध्यान करने से अभ्यासी अपने दैनिक अस्तित्व को—बाह्य जगत् को—भूलकर भीतरी जीवन में लीन हो जाता है।

कहते हैं, इस कमल का ध्यान करनेवाला योगी एक सहस्र वर्ष तक जी सकता है, और इस काल में उसका शरीर पूर्ण-रूप से हृष्ट-पुष्ट एवं सदा तरुण बना रहता है।

मैं नहीं कहना चाहती कि यह बात संभव है, या असंभव। कदाचित् संभव हो; क्योंकि वे कहते हैं, ऐसी कोई भी चीज़ नहीं, जो असंभव हो।

छठा कमल भ्रू-मध्य में अवस्थित है। यह वह स्थान है, जिस पर कुछ विधियों के अनुसार प्राणायाम के अभ्यास में ध्यान लगाया जाता है।

यह 'आज्ञा'-कमल कहलाता है, और इसमें केवल दो ही दल होते हैं। यहाँ महान् प्रकाश पाया जाता है, जिसका ध्यान करने से अतीव आश्चर्य-जनक आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

यह शरीर का प्रधान कमल है।

सुषुम्णा मेरु-दंड में से 'आज्ञा'-कमल को दहनी ओर से ऊपर चढ़ती और वहाँ से बाएँ नथने में चली जाती है।

तालू के मूल में 'सहस्र दल-कमल' और इसके मध्य में 'चंद्र-मंडल' है, जिससे अमृत-रस बरसता है। इस अमृत-रस का उल्लेख मैं 'इडा' और 'पिङ्गला' के साथ पूर्व प्रकरणों में कर आई हूँ। यह भी बाएँ नथने में जाता है।

पिङ्गला 'आज्ञा'-कमल की बाईं ओर से आती और दाएँ नथने में जाती है।

मेरु-दंड की जड़ में अवस्थित मूलाधार-कमल से एक विषाक्त शक्ति निकलकर ऊपर को ओर दाएँ नथने में जाती है। यह धारा मृत्यु की, और बाएँ नथने में जानेवाला चंद्रामृत-रस अमरता का द्योतक है।

'आज्ञा'-कमल का ध्यान करने से योगी अपने समस्त भूतकर्मों को नष्ट कर डालता है, और भौतिक जीव बड़ी प्रसन्नता से उसकी सेवा के लिये आते हैं।

यदि वह अपनी जीभ को तालू के साथ पीछे लपेटकर अपने मन को इस कमल पर स्थिर करता है, तो उसके पाप और भय, दोनों नष्ट हो जाते हैं, और वह दोनों से छूट जाता है।

इस पवित्र स्थान पर मन को एकाग्र करने का महत्त्व इतना बड़ा है कि शब्दों द्वारा नहीं बताया जा सकता।

सहस्रार-मंडल या सहस्र-दल-वाला कमल, जैसा कि पहले कहा गया है, तालू के मूल में अवस्थित है। सुषुम्णा के मूल का स्थान भी यही है, और यही ब्रह्मरंध्र या 'ब्रह्म का छिद्र'-नामक स्थान है। योगीजन इसी ब्रह्मरंध्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिये निरंतर यत्न करते रहते हैं।

इसका ध्यान करते समय योगी को उँगलियों से अपना मुँह और नथने बंद कर लेने चाहिए।

सभी नाड़ी-केंद्र या चक्र गाँठों या गुत्थियों द्वारा बंद और बँधे पड़े हैं। इसी कारण मनुष्य अपने शरीर की शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकता।

एक कुंडलिनी शक्ति ही इन गाँठों को खोल सकती है, और कुंडलिनी केवल उसी समय ब्रह्मरंध्र में से निकल सकती है, जब वायु शरीर में बंद हो।

उद्देश्य यह है कि प्राण को सुषुम्णा (मेरु-दंड का मध्यवर्ती मार्ग) में से चलाया जाय। साधारण मनुष्य में यह शक्ति सोई हुई और मंद रहती है। इसी के साथ उसकी सारी शक्तियाँ भी मंद रहती हैं।

इसे जगाना होता है, और तब यह धीरे-धीरे, एक-एक परमाणु, मेरु-दंड के केंद्र की ओर चढ़ती है। जब तक यह वहाँ पहुँच नहीं जाती, अभ्यासी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

व्यक्ति-गत रूप से मेरा यह विचार है कि इन आध्यात्मिक केंद्रों या कमलों में से प्रायः किसी एक का ध्यान करने से वही परिणाम होता है, जो उन सबका ध्यान करने से।

ध्यान करने की विद्या को धारणा के साथ न मिला देना चाहिए।

स्वभावतः एक तो वह विषय होता है, जिसपर अभ्यासी ध्यान जमाता है—अर्थात् शरीर का कोई एक आध्यात्मिक केंद्र या कमल।

धारणा का अर्थ है एकाग्रता को स्थिर करना। परंतु ध्यान में योगी अपने मन को उस विषय में लीन कर देता या मिला देता है, जिसपर वह अपने मन को स्थिर करता है। मैं समझती हूँ, इसे धारणा का विस्तार कहना अच्छा होगा।

मन उस विषय के गुण और वर्ण को धारण कर लेता है, और इस प्रकार तद्रूप हो जाने से स्वभावतः वह इस अवस्था में होता है कि उन सारी बातों को ग्रहण कर सकता और समझ सकता है, जिन्हें वह विषय सिखा सकता है।

योग यह मानता है कि सारा ज्ञान मनुष्य के भीतर है, और मनुष्य, वास्तव में, ब्रह्मांड का एक नमूना अर्थात् एक छोटा-सा ब्रह्मांड है। इसलिये अपने अधिक

भीतरी और दीप्त अंगों में विलीन हो जाने से योगी को सब ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

विचार और सूचना का आधार भी यही कल्पना है। वास्तव में उन्होंने इसे योग से ही लिया है।

किसी कमल पर ध्यान जमाते समय सदैव मन में इसके गुह्य रूप को याद रक्खो, जिससे मन को वश में करने का प्रयत्न ठीक परिणाम उत्पन्न करे।

दिव्य वस्तुओं का निरंतर ध्यान करने से अभ्यासी व्यक्ति संसार को भूल जाता है, और जब एक बार वह ऐसा कर सकता है, तब उसमें आश्चर्य-जनक शक्तियों के प्राप्त करने की सामर्थ्य आ जाती है। ज्यों ही संसार उसको अपने अधीन रखने और उसकी बुद्धि पर शासन करने में असमर्थ हो जाता है, त्यों ही अभ्यासी साधारण मनुष्य पर शासन करनेवाली सभी वस्तुओं, और इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी चीज़ों का स्वामी बन जाता है; क्योंकि अदृश्य जगत् और आध्यात्मिक शक्ति के प्रदेश उस के सामने सिर झुका देते हैं, उसके नेत्र सब चीज़ों को देखने लगते हैं, सारा ज्ञान और सारी शक्ति उसकी हो जाती है। उसे मनुष्य और देवता, दोनों नमस्कार करते हैं; उसके लिये कोई भी बात असंभव नहीं रहती। शोक और पाप उसे स्पर्श नहीं कर सकते। रोग उस के शरीर के पास फटकने तक नहीं पाता।

वह रोगियों को चंगा कर सकता, और किसी-दूसरे व्यक्ति, पशु या कीड़े के शरीर में प्रवेश करा सकता है। वह वायु और जल पर चल सकता है। वास्तव में उसे वे सब आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जिनका अनिश्चित वर्णन पूर्व का पर्यटन करनेवाले लोगों से पश्चिम के लोग कभी-कभी सुनते रहते हैं, और जिनको सुनकर उनका उन पर पूर्ण विश्वास नहीं होता। वे सत्य हैं, और जिस-किसी में भी श्रद्धा एवं उत्साह हो, वह उन्हें प्राप्त कर सकता है।

आठवाँ प्रकरण

ईरान का जादू

यद्यपि फ़ारस के सूफ़ी हिंदू-योगी से वैसी ही घृणा करते हैं, जैसी एक संप्रदाय दूसरे से कर सकता है, तो भी जहाँ तक शिक्षा का संबंध है, प्राचीन फ़ारसी लोगों के जादू का आधार बहुत कुछ राज-योग ही की शैली है।

शिक्षा का कई बातों में भेद है। सूफ़ी की शिक्षा की कल्पना निश्चय ही अधिक पवित्र है; क्योंकि हठ-योग में बार-बार आनेवाली लैंगिक बातों का इसमें कुछ भी उल्लेख नहीं।

फ़ारसी सूफ़ी और हिंदू-योगी के विषय में एक पुरानी कहानी है। एक बार एक सूफ़ी किसी योगी से मिला। दोनों ने विविध रीतियों से एक दूसरे की शक्तियों की परीक्षा की। जो-जो चमत्कार सूफ़ी ने दिखलाए, योगी ने भी सब कर दिखाए। अंत को यह निश्चय हुआ कि वे दोनों अपने को पानी बनाकर दो कटोरों में भर दें।

जब दोनों ने अपने भौतिक शरीरों को घुलाकर जल के रूप में परिणत कर दिया, तो देखा गया कि ईरानी सूफ़ी का जल काँच के सदृश स्वच्छ था, परंतु योगी का पानी गँदला और मैला था।

मैं यहाँ यह बता दूँ कि यह कहानी मुझे एक सूफ़ी ने ही सुनाई थी; परंतु यह उस दृष्टि को प्रकट करती है, जिससे वे एक-दूसरे को देखते हैं।

जो शिक्षार्थी ईरानी रीति से गुह्य शक्तियों को बढ़ाना चाहता है, वह हिंदू-विधि से कुछ भिन्न रीति का अवलंबन करता है।

उसे नए चंद्रमा के समय से, (उसके प्रकट होने के पहले सात दिनों के भीतर) 'अभ्यास' का आरंभ करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे पहले उस दिन से आरंभ करना चाहिए, जो उसके नाम की संख्या के अनुरूप हो।

नीचे हम अक्षरों का मूल्य देते हैं। इनसे शिक्षार्थी अपनी संख्या निकाल सकेगा।

अ	का	मूल्य	१	क	का	मूल्य	२०
आ	,,	,,	१	ख	,,	,,	२८
इ	,,	,,	१०	ग	,,	,,	३
ई	,,	,,	१०	घ	,,	,,	११
उ	,,	,,	६	ङ	,,	,,	५०
ऊ	,,	,,	६	च	,,	,,	११
ए	,,	,,	१०	छ	,,	,,	१६
ऐ	,,	,,	१०	ज	,,	,,	३
ओ	,,	,,	८	झ	,,	,,	११
औ	,,	,,	८	ञ	,,	,,	५०
ट	,,	,,	६	प	,,	,,	८०
ठ	,,	,,	१७	फ	,,	,,	८
ड	,,	,,	७००	ब	,,	,,	२
ढ	,,	,,	७०८	भ	,,	,,	१०
ण	,,	,,	५०	म	,,	,,	४०
त	,,	,,	४००	य	,,	,,	१०
थ	,,	,,	४०८	र	,,	,,	४००
द	,,	,,	४	ल	,,	,,	३०
ध	,,	,,	१२	व	,,	,,	६
न	,,	,,	५०	श	,,	,,	३००

ष	,,	,,	३००	क़	,,	,,	१००
स	,,	,,	६०	ख़	,,	,,	६००
ह	,,	,,	८	ग़	,,	,,	१०००
				ऋ़	,,	,,	७०
				ज़	,,	,,	७००
				फ़	,,	,,	८०

मान लीजिए कि नाम मोहन है। तब—

म	बराबर	है	४०
ओ	,,	,,	८
ह	,,	,,	८
न	,,	,,	५०

अब इन संख्याओं को जोड़ो, इस प्रकार—

४० + ८ + ८ + ५० = १०६

परंतु १०६ एक ऐसी संख्या है, जिसका मूल्य ज्ञात नहीं। इसलिये इन तीनों अंकों को फिर जोड़ो—१ + ० + ६=७ यही मोहन के नाम का अंक है।

इस प्रकार यदि किसी नाम के अक्षरों का जोड़ १५ हो, तो फिर जोड़कर (१, ५) ६ कर लो।

अब सप्ताह के प्रति-दिन के साथ नक्षत्र का एक चिह्न लगाया जाता है, और सात नक्षत्रों में से प्रत्येक का अपना-अपना एक अंक है।

सोमवारका अधिपति चंद्रमा है; इसके अंक ७ और २ हैं।

मंगलवार का अधिपति मंगल है; अंक ९ है।

बुधवार का अधिपति बुध है; अंक ५ है।

बृहस्पतिवार का अधिपति बृहस्पति है; अंक ३ है।

शुक्रवार का अधिपति शुक्र है; इसका अंक ६ है।

शनिवार का अधिपति शनि है; इसका अंक ८ है।

आदित्यवार का अधिपति सूर्य है; इसके अंक ४ और १ हैं।

शिक्षार्थी को उसी दिन अभ्यास का आरंभ करना चाहिए, जो उसके नाम के अंक के अनुरूप हो।

इसलिये मोहन सोमवार को आरंभ करेगा। उसका अंक ७ है, और अधिपति चंद्रमा।

यदि दो-तीन नाम इकट्ठे हों, जैसे मोहनलाल, अथवा रामनारायणसिंह, तो प्रत्येक अवस्था में पूरे नाम के योग-फल को जोड़ते-जोड़ते १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ या ९ में से किसी अंक तक पहुँचा दो।

उदाहरणार्थ—मोहन ७, और लाल ७ के बराबर है। तब, ७+७=१४, और१+४=५ के है। इस तरह ठीक दिन चुन लेने के बाद शिक्षार्थी आधी रात के समय एकांत में चला जाता है। एकांत में बैठने के थोड़ी देर पहले वह गरम जल से स्नान करता और साफ वस्त्र पहन लेता है। ये वस्त्र यदि हल्के ऊनी हों, तो और भी अच्छा। ईरानी सूफ़ी रात में अभ्यास करता है, और योगी दिन में।

तब उसे शरीर के शुद्ध करने की विधि सिखाई जाती है। इसके लिये एक ताज़ा तोड़ा हुआ गुलाब का फूल लेकर अभ्यास करते समय कभी-कभी इसकी सुगंधि सूंघी जाती है। फिर दोनों हाथों की उँगलियों से आँख, नाक, कान और मुँह बंद कर दिया जाता और एक नथने में से साँस खींचकर फेफड़े भर लिए जाते हैं। इस के बाद उस नथने को फिर बंद कर दिया जाता है।

प्रत्येक रात्रि को बीस मिनट तक इसका अभ्यास करना चाहिए। आरंभ में पहले-पहल आँखों के सामने गड़बड़-सा प्रकाश चमकने लगता है; फिर एक काला मंडल दिखाई देता है। इसके चारों ओर धुँधले प्रकाश की एक हलकी-सी कोर होती है। यह काला मंडल मनुष्य की आत्मा को प्रकट करता है, जो पाप और भौतिकता से काली और छिपी हुई होती है।

अभ्यास करते-करते यह मंडल उजला और हलका होता जाता है; यहाँ तक कि अंत में अभ्यासी को अत्युज्ज्वल श्वेत प्रकाश की ऐसी ज्योति दिखने लगती है, जिसके मध्य में कालिमा बिलकुल नहीं होती।

इसकी सिद्धि अगले चाँद तक हो जाती है, या इसे अनेक चाँदों का अंतर लग जाता है। परंतु ये साधन हैं। ज्यों ही प्रकाश दिखने लगे, अभ्यासी को

समझ लेना चाहिए कि वह शुद्ध हो गया, और अब आगे चल सकता है।

ईरानी सूफ़ी हिन्दू-योगी की अपेक्षा मंत्र का बहुत अधिक उपयोग करता है, और पवित्र शब्दों के निरंतर जप से अत्यंत आश्चर्य-जनक परिणाम भी उत्पन्न होते हैं।

सबसे अधिक प्रयोग 'इस्मेजलाल', या ईश्वरके अन्य सुंदर नामों का किया जाता है। ये नाम एक सहस्र से ऊपर हैं।

इनका प्रयोग सब प्रकार की मानवी कामनाओं — धन, शक्ति, बदला, ज्ञान, इत्यादि — की प्राप्ति के लिये किया जाता है।

इससे भी बढ़कर बात यह है कि ये टोने या मंत्र अतिशय प्रभावशाली हैं। ये केवल समय और धैर्य चाहते हैं।

इस अभ्यास और इसके परिणाम की व्याख्या करना कठिन है। हो सकता है कि यह सचमुच जादू हो, सच्चे और उत्साही याचक की प्रार्थना का दिव्य शक्ति की ओर से उत्तर हो, या श्रद्धा और संकल्प-शक्ति के संयोग से प्राप्त होनेवाला केवल स्वाभाविक परिणाम हो; क्योंकि संकल्प-शक्ति इतनी प्रबल होती है कि वह अपने स्वामी को थका देनेवाली परीक्षाओं में से पार ले जाती है। यह कुछ भी हो, इसके परिणाम आप के सामने हैं।

एक मंत्र इस प्रकार है—प्रारंभिक अभ्यास द्वारा शरीर और मन शुद्ध करने के बाद अभ्यासी आधी रात को

किसी एकांत कोठरी में चला जाय। यह कोठरी उस-की दृष्टि में पवित्र होनी चाहिए। इसमें उसके सिवा और किसी का आना-जाना न हो। वह आप ही इसे साफ़ करे।

इस कोठरी में किसी प्रकार की सामग्री न होनी चाहिए। इसमें बैठने के लिये केवल एक गद्दी, प्रति-दिन अभ्यास में काम आनेवाले फूल, शुद्ध जल का एक पात्र तथा संदल की लकड़ी की एक डब्बी के अतिरिक्त और कुछ न हो।

यदि संभव हो, तो इस कोठरी का मुँह पूर्व की ओर हो। साफ़ सफ़ेद ऊनी कपड़े का एक ढीला-सा चोला पहन, हाथ में गुलाब का एक ताज़ा फूल तथा एक सो मोटे बादाम लेकर अभ्यासी अपनी कोठरी में प्रवेश करता है, और एक सूक्ष्म प्रार्थना के अनंतर अभ्यास आरंभ कर देता है। अभ्यास कर चुकने के बाद वे बादाम उस संदल की डिबिया में रख दिए जाते हैं।

अभ्यासी भूमि पर गद्दी या आसन बिछाकर मुंह पूर्व की ओर करके आराम से बैठ जाता है। वह अपनी आँखें बंद कर लेता और बादामों की डबिया अपनी गोद में धर लेता है। फिर समुचित पूजा के भाव से धीमे और समानस्वर में "या! ग़नी ओह! या! ग़नी ओह!" का निरंतर एक सौ बार जप करना है, और हर बार

डबियों में से एक-एक बादाम निकालकर गोद में रखता जाता है ।

बादामों के रखने का प्रयोजन यह है कि गिने बिना ही पवित्र नाम का जप अच्छी संख्या में हो जाय ; क्योंकि अंतिम बादाम से अभ्यासी को पता लग जाता है कि मेरा काम समाप्त हो गया ।

यह मंत्र धन की प्राप्ति के लिये है । "अल ग़नो" का अर्थ है, "धनाढय", और उसका नाम लेने से उपासक को बहुत-सा भौतिक धन मिल जायगा ।

नए चंद्रमा के साथ सप्ताह के उस दिन अभ्यास का आरंभ करना चाहिए, जो अभ्यासी के नाम के अंक के अनुरूप हो ।

एक पखवारे के पश्चात् अभ्यास को एक सौ से पाँच सौ बार तक बढ़ा देना चाहिए, और इस मंत्र का जप तब तक बराबर जारी रखना चाहिए, जब तक अभ्यासी एक भी दिन का नागा किए बग़ैर पच्चीस लाख बार परमेश्वर के नाम का जप पूरा न करले ।

अंतिम जप तक पहुँचने के बहुत देर पहले ही धन और सफलता उसका आलिंगन कर लेगी । परंतु उसे किसी भी अवस्था में अपनी श्रद्धा को डगमगाने न देना चाहिए । उसे न तो संदेह करना चाहिए, और न कोई ऐसा कर्म ही, जिस से वह अपवित्र हो जाय ।

गुलाब के फूल और बादामों को पवित्र समझना और उस कोठरी में संचित रखना चाहिए। अभ्यासी के सिवा दूसरा और कोई उन्हें हाथ न लगावे।

अभ्यास करते समय जो आभास उसके नेत्रोंके सामने आते हैं, वे बहुधा बहुत ही अद्भुत होते हैं। कुछ काल के पश्चात् प्रकाश के एक देदीप्यमान देवता के रूप में अत्यंत सुंदर मुखवाला 'अल् ग़नी' वह सचमुच अपने सामने उपस्थित पावेगा।

जब अभ्यासी इतना पवित्र हो जाता है कि वह बिना अचेत हुए इस आभास की चकाचौंध करदेनेवाली प्रभा को सहन कर सकता है, तब उसे प्रकृति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है; क्योंकि देवदूत उसका हाथ पकड़कर उसे संसार की अद्भुत-अद्भुत और त्रास-जनक वस्तुएँ दिखलाता चलता है।

मनुष्य की सब बुराइयाँ और भय उसके सामने नंगे करके रख दिए जाते हैं; सब कुकर्म, जो निरंतर किए जा रहे हैं, सारी क्रूरता और दुर्गति, जो सभ्य समाज में छिपी हुई है, उसके नेत्रों के सम्मुख प्रकट हो जाती है, और पृथ्वी के पेट की सब बातें उसे ज्ञात हो जाती हैं।

तब यहाँ से 'अल ग़नी' देव-दूत उसे दूसरे लोकों और मंडलों में ले जाता है, जहाँ दिव्य दीप्तिवाले उज्ज्वल प्राणी निवास करते हैं। अब उसकी बुद्धि परमात्मा के

रहस्यों को स्पष्ट और निश्चितरूप से जानने लगती है। परंतु प्रत्येक मनुष्य उस भीषण यात्रा को सहन नहीं कर सकता।

۶	۱	۸
۷	۵	۳
۲	۹	۴

जो कुछ वह देखता है, पहले-पहल उसका कुछ अंश ही उसे स्मरण रहता है; परंतु कुछ काल के उपरांत उसे अधिकाधिक स्मरण रहने लगता है, यहाँ तक कि उसका मन उन सब बातों को याद रखने लगता है, जिन्हें उसने अपने पर्यटन में देखी थीं, या जो घटनाएँ उसके साथ घटी थीं।

जिस चुंबकीय शक्ति या ओज का उपयोग ईरानी करते हैं, वह अतीव प्रबल है; क्योंकि सूफ़ी इसे जितनी भी दूर चाहें, फैला सकते हैं, यहाँ तक कि लोगों को इसके आघात का स्पष्ट-रूप से अनुभव भी हो सकता है।

इसके अतिरिक्त जनता पर उनका वास्तविक प्रभाव पड़ता है। इसलिये वे जिससे भी संसर्ग करते हैं, उसे अपने अधीन कर लेते हैं।

इस प्रयोजन के लिये जो टोना करना पड़ता है, उस-

की क्रिया बड़ी ही विचित्र है। अभ्यासी प्रति-दिन काग़ज़ के ढाई सौ छोटे-छोटे वर्गाकार टुकड़े लेकर उनपर ऊपर दिए हुए तावीज़ की शक्ल या नक़्शा लिखता है। फिर प्रत्येक टुकड़े को लपेटकर गुँधे हुए आटे की एक-एक गोली बनाकर उसी में बंद कर देता है। गोली में बंद करते समय अभ्यासी मन-ही-मन धीरे-धीरे "या क़ाबिज़ो" "या क़ाबिज़ो" पढ़ता रहता है।

गोलियाँ बना लेने पर वह उन्हें एक ओर रख देता है, और दिन चढ़ते ही किसी जगह जल में फेंक आता है, जहाँ मछलियाँ उन्हें निगल जायँ।

यदि कोई अभ्यासी प्रति दिन यह कर्म करता रहे, यहाँ तक कि उसकी इस प्रकार बनाई हुई डेढ़ लाख गोलियों को मछलियाँ खा चुकें, तो वह, जिसके भी प्रेम को चाहे, अपनी ओर खींच सकेगा, और उस की ओज-शक्ति बहुत बढ़ जायगी।

इस अभ्यास को किसी भी मास में नए चाँद के पहले शुक्रवार को आरंभ करना चाहिए। इसमें अभ्यासी के नाम या अंक पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं।

ऊपर दिया हुआ वर्ग सोने की एक छोटी-सी पट्टी पर खुदवाकर गंडे के रूप में गले में भी पहना जा सकता है यदि अभ्यासी को सौभाग्य से अरब के अंतर्गत मद

के आस-पास के सुलेमानी पत्थर का टुकड़ा मिल जाय, और उसपर वह यह जंत्र खोद ले, तो गंडे की शक्ति और भी अधिक बढ़ जायगी।

ईरानी लोग एक और रीति से भी अनुपस्थित व्यक्ति पर प्रभाव डालते हैं। मेरा विश्वास है कि यह रीति हमारे पाश्चात्य अभ्यासियों को ज्ञात नहीं।

इसके द्वारा अभ्यासी का कर्मोद्यत और ओजस् संकल्प अपने लक्ष्य की—उस व्यक्ति की, जिसे वह आकर्षित करना चाहता है—निश्चेष्ट मूर्ति उत्पन्न कर सकता है, और उस शरीर को, या उस के आभास को इस प्रकार चित्त में जमा सकता है कि उसको हर प्रकार से अभ्यासी की इच्छा और आदेश के आगे सिर झुकाना पड़ता है।

बात तो यह है कि अभ्यासी संभवतः उसके सूक्ष्म शरीर का आह्वान करता है, जिससे उसका स्थूल शरीर, जहाँ-कहीं भी वह हो, गहरी नींद में सो जाता है, और, तब तक नहीं जागता, जब तक अभ्यासी अपना टोना समाप्त न करले।

सारे ईरानी और अरबी जादू में अंक-विद्या बड़ा काम करती है। इसलिये अभ्यासी को इस विषय का संपूर्ण नाम, उसके संख्या-घटित मूल्य के अनुसार, लिखना चाहिए। काग़ज़ के टुकड़े पर अङ्कों को लिखकर वह उस काग़ज़ को अपने बाएँ घुटने पर रखता है, और अपने

विषय के मुखमंडल और आकार का चिंतन करते हुए वह उन अङ्कों को निश्चल दृष्टि से देखता है।

तब वह धीमे और समान स्वर से 'ला इलाहे इल लिल्लाह' का मंत्र पढ़कर अपने मानसिक नेत्रों के सामने विषय की बुलाई हुई मायामयी मूर्ति के मुँह पर फूंक मारता है। इस प्रकार वह उस मूर्ति को अपने अधिक निकट लाता और मानसिक दर्शन में अधिक स्पष्ट देखता है।

कभी-कभी वह अपनी आँखें बंद कर लेता है, और सारे समय अपने विषय के कल्पित मुख पर फूकें मारता रहता है।

तब वह कुरान का दूसरा अध्याय पढ़ता है। परंतु उसे एक घड़ी के लिये भी उस कल्पित मूर्ति को आँखों से ओझल न होने देना चाहिए। जब वह स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे, तब उसे उच्च स्वर से अपनी कामना बताकर अपने संकल्प को उसपर अंकित करना चाहिए।

इन साधनों द्वारा एक प्रकार का टोना-जादू प्रचलित हो गया है। अभ्यासी इच्छा करने से विषय को बीमार अथवा नीरोग कर सकता है।

परंतु जब अङ्कोंवाले काग़ज़ के स्थान पर विषय का मुख और चित्र दिखाई देने लगे, तब अभ्यासी को बड़े ज़ोर से उसके मुँह पर फूँक मारनी चाहिए, और 'ला इलाहे इल

लिल्लाह' का जप करते हुए उसे निरंतर जो कुछ उस-
कराया जाना है, बतलाते जाना चाहिए।

एक बार जब यह शक्ति प्राप्त हो जाती है, तो अभ्यासी को दूसरों पर ख़ासा अधिकार मिल जाता है, और वह टोना कर सकता है, विशेषतः स्त्रियों और निर्बल संकल्पवाले लोगों पर।

यह काला जादू है; पर इसे अच्छे कामों में भी लगाया जा सकता है। इसके द्वारा पति-त्यक्ता स्त्री अपने पति के खोए हुए प्रेम को पुनः प्राप्त कर सकती है, रूठे हुए पुनः मित्र बन सकते हैं।

परंतु इसके लिये दृढ़ संकल्प, बड़ी ही स्पष्ट तथा प्रबल कल्पना-शक्ति और प्रचुर श्रद्धा की आवश्यकता है; क्योंकि ये गुण केवल बहुत थोड़े मनुष्यों में ही पाए जाते हैं। इसी लिये इस भयानक पूर्वी जादू को यहाँ लिखने में मुझे कोई हानि नहीं समझ पड़ी।

अभ्यासी अपने विषय पर अच्छा-बुरा जैसा चाहे, प्रभाव डाल सकता है। उसे वह हर्ष या शोक, घृणा या प्रेम—चाहे जिस अवस्था—का तीव्र अनुभव करा सकता है। किंतु इसी प्रकार वह उसे किसी गुण का दान भी दे सकता है, जैसे संगीत, लिखने की क्षमता, शिल्प-कला, गायन, तर्क-विद्या, अंक-शास्त्र इत्यादि। वह मिथ्यावादी को सत्यवादी और सत्यवादी को मिथ्यावादी बना सकता है।

वास्तव में जादू की इस असाधारण विधि की सीमा नियत करना कठिन है। यह सब प्रकार से हिप्नॉटिज़्म और योरपीय ही नहीं, तथा हिंदू-विधियों से भी कहीं अधिक प्रबल है। इसके परिणाम उनकी अपेक्षा अधिक चिर-स्थायी होते हैं।

मध्य-काल में, टोना करनेवाली स्त्री या पुरुष जिस व्यक्ति को हानि पहुँचाना चाहता था, उसकी एक मोम की मूर्ति बना लेता था। परंतु ईरानी सूफ़ी अपनी ही मूर्ति बनाता है, और संकल्प का प्रयत्न उसकी शक्ति को असीम रूप से बढ़ा देता है।

जो लोग अपनी ओजस् शक्ति को बाहर भेजने का प्रयत्न करते हैं, वे देखेंगे कि जिस क्रिया में संकल्प को प्रबल आयास करना पड़ता है, उसी-का परिणाम सबसे अधिक प्रबल होता है। यदि इच्छा-शक्ति किसी बात के लिये दृढ़ता-पूर्वक निरंतर आयास करे, तो यह संभव नहीं कि उसको प्राप्ति न हो।

उद्देश्य की दृढ़ता और संकल्प-शक्ति का उग्र प्रयोग ही वह सच्चा रहस्य है, जिससे पूर्वी लोग जादू की क्रियाओं में हमारी अपेक्षा इतनी अधिक सफलता लाभ कर लेते हैं।

यदि हमारा मन उनके मन के समान ही बलवान् हो, और हममें भी एकाग्रता की वैसी ही शक्ति हो, तो हम भी

वे सब बातें, बल्कि उनसे कुछ अधिक कर सकते हैं, जिन्हें पूर्वी लोग करते हैं। यदि किसीको कुछ संदेह हो, तो वह इस प्रकरण में दिए हुए किसी टोने या गंडे को परीक्षा करके देख ले। हाथ कंगन को आर्सी क्या।

परिशिष्ट

पर-काया-प्रवेश

जो निराशा-वादी समझते हों कि भारतवासी सामर्थ्य-हीन हो गए हैं, तथा उनकी विद्या लुप्त हो गई है, वे नीचे लिखे हुए एक योगी के अद्भुत हाल को पढ़ लें। यह समाचार पंडित अमरनाथ शर्मा ने प्रत्यक्ष देखकर अमृतसर के "उपदेशक"-नामक मासिक पत्र में प्रकाशित किया था—

छः-सात वर्ष व्यतीत हुए, चंपानाथ नाम के एक योगी गर्मी के दिनों में आया करते थे। उनका स्थान 'तकी'-नदी के किनारे पर था। वह मुझपर बड़ा प्रेम करते थे। योगी निस्वार्थ और स्वच्छंद थे, और उन्होंने अनेक बार अपने अद्भुत चमत्कार सहज ही दिखलाए थे। उनकी आयु कोई ७० वर्ष की थी; परंतु शरीर हृष्ट-पुष्ट था। इस समय (जिस समय का वर्णन है) वह दो वर्ष के बाद हरद्वार से जंबू पधारे थे। वह अब बहुत कृश

मालूम पड़ते थे। कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि मुझे एक ऐसे मित्र मिल गए थे, जिन्होंने मुझे मद्य पिला दिया; इसी से मेरा शरीर कृश हो गया है। अब मैं इसको बदलना चाहता हूँ। यह सुन मैंने समझा कि उन्होंने समाधि लेने का निश्चय किया होगा। एक दिन, जब मैं ही अकेला उनके पास था, उन्होंने मुझ से कहा कि यदि तुम मेरी एक बात गुप्त रक्खो, तो मैं अपने मनका हेतु तुमको कहूँ। मेरे स्वीकार करने पर उन्होंने मुझसे कहा कि एक बोतल शराब, एक कटोरा-भर मांस और एक कटोरा खीर का मुझे ला दो। आज्ञानुसार मैं वे वस्तुएँ लेकर ठीक समय पर उनके पास जा उपस्थित हुआ। मुझे देखते ही वह उठ खड़े हुए, और मुझे साथ लेकर मुसलमानों के क़ब्रस्तान की तरफ़ चले। आधी रात का समय था। उसी दिन एक मुसलमान-रँगरेज़ का एक सुंदर लड़का मरा था। उसी तरुण लड़के की क़ब्र के पास जा योगी महाराज खड़े हो गए। इसके बाद मुझे कोई ६ हाथ की दूरी पर खड़ा कर मेरे चारों ओर एक वर्तुलाकार रेखा खींची, और मुझसे कहा— 'मेरे कितना भी बुलाने पर तुम मेरे पास न आना। जब मैं ये चीज़ें माँगूँ, तब एक-एक कर मुझे दे देना'। फिर उन्होंने क़ब्र के पास की ज़मीन साफ़ कर और क़ब्र खोदकर लड़के के शव को साफ़ की हुई ज़मीन पर सुला दिया। क़ब्र के

उत्तर की ओर थोड़ी ज़मीन और साफ़ की, और आप स्वयं उस पर लेट गए। आध घंटे के बाद वह व्याकुल होने लगे, और अब आवाज़ का निकलना भी मुश्किल हो गया। अधिक कष्ट के कारण अब तो उन की नस-नस दुखने लगी। उन्नीस-बीस मिनट के बाद वह चिल्ला उठे, और उन के शरीर का हिलना-डुलना बंद होगया। इतने ही में उधर लड़के का शव हिलने लगा, और थोड़ी ही देर में उसने नेत्र खोल दिए। उसके नेत्र जलती हुई आग के समान लाल हो रहे थे। मैं भय से हत-ज्ञान होगया। इतने में उस तरुण ने या यों कहिए कि उस तरुण के शव ने करवट ली, और मेरी तरफ़ हाथ बढ़ाने लगा। हाथ इतना लंबा हुआ कि वह मेरे पास पहुँच गया। मैंने योगी की आज्ञानुसार डरते-डरते उसको सब चीज़ें देना आरंभ कर दिया। उन वस्तुओं को खा-पी कर वह लड़का अथवा प्रेत उठ खड़ा हुआ, और मुझे अपने पास बुलाने लगा। मैंने योगी की आज्ञा का स्मरण कर उसी जगह से कहा—"माफ़ कीजिए, मैं आपके पास नहीं आ सकता"। फिर वह आप ही मेरे पास आया, और मेरी सहायता से उस तरुण ने अर्थात् उसके शव में प्रवेश किए हुए योगी ने, अपने पुराने शरीर को उसी क़ब्र में गाड़ दिया। इसके बाद उसने मुझसे कहा—"मैं जाता हूँ; दस-बारह वर्ष के बाद तुमसे मिलूँगा, और तुमको तुम्हारी मेहनत

का पुरस्कार दूँगा।" मेरे अनुरोध करने पर उन्होंने मुझे घर पहुँचा दिया, और आप चले गए। इस सबका परिणाम यह हुआ कि दो सप्ताह तक मुझे इतना ज्वर आया कि कुछ सुध तक न रही। ज्वर उतर जाने पर जब मेरे होश-हवास दुरुस्त हुए, तो मैंने लोगों के मुँह से एक बड़े ही आश्चर्य की बात सुनी।

मृत लड़के के मकान के सामने एक सुनार रहता था। वह अमृतसर में अपनी सुसराल जब गया, तो वहाँ यकायक उसे वही रँगरेज़ का लड़का मिला। सुनार ने पहचान लिया, और उसका हाथ पकड़कर उससे वहाँ आने का कारण पूछा। लड़के ने (अर्थात् उस लड़के के शरीर में प्रवेश किए हुए योगी ने) उत्तर दिया कि पिता से अनबन होने के कारण मैं यहाँ रोज़गार करने चला आया हूँ। सुनार उसको अपने स्थान पर ले गया। लड़का वहाँ खा-पी कर सोया, और सवेरा होते ही मैदान जाने के बहाने जो बाहर गया, तो फिर न लौटा। सुनार जब लौट कर अपने घर आया, तो उसने रँगरेज़ को सब हाल कह सुनाया। यह सुन सब आश्चर्य-चकित हुए। तब किसी ने यह कल्पना भिड़ाई कि चलकर क़ब्र खोदें और देखें। सब लोग मिलकर वहाँ गए, और देखा, तो सचमुच लड़के की लाश ग़ायब थी। उसकी जगह सत्तर-अस्सी वर्ष के एक वृद्ध पुरुष की लाश थी।

अस्तु, सुनार के कथन पर लोगों को विश्वास करना पड़ा, और उस तरुण की खोज में आदमी रवाना हुए। परंतु अभी तक उसका पता नहीं लगा।

"देवनागर" (मिथुन ५०११ कल्याब्द) से उद्धृत।